महापुरुषों के प्रेरक प्रसंग

आर.के. मूर्ति

प्रकाशन विभाग

महापुरुषों के प्रेरक प्रसंग

आर. के. मूर्ति

अनुवादक : राधानाथ चतुर्वेदी

प्रकाशन विभाग

सूचना और प्रसारण मंत्रालय

भारत सरकार

प्रथम संस्करण : शक 1925 (2003)

ISBN : 81-230-1108-3

मूल्य : 65.00 रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली - 110001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग

- पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली - 110001
- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली - 110001
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड बालार्ड पायर, मुंबई - 400038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कोलकात्ता - 700069
- राजाजी भवन, बेसेंट नगर, चेन्नई - 600090
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004
- प्रेस रोड, निकट गवर्नमेण्ट प्रेस, तिरुअनंतपुरम - 695001
- प्रथम तल, एफ विंग, केन्द्रीय सदन, कोरामंगला बंगलौर - 560034
- अम्बिका कॉम्प्लैक्स, प्रथम तल, पाल्दी, अहमदाबाद - 380007
- नौजान रोड, उजान बाजार, गुवाहाटी - 781001
- 27/6, राम मोहन राय मार्ग, लखनऊ - 226001
- ब्लॉक नं. 4, पहली मंजिल, गृहकल्प कॉम्प्लैक्स, एम.जे. रोड, नामपल्ली, हैदराबाद - 500001

विक्रय काउंटर ● पत्र सूचना कार्यालय

- 80, मालवीय नगर, भोपाल - 462003 (म.प्र.)
- सी.जी.ओ. काम्प्लैक्स, 'ए' विंग, ए.बी. रोड, इंदौर (म.प्र.)
- बी-7/बी, भवानी सिंह मार्ग, जयपुर - 302001 (राजस्थान)

कम्पोजिंग, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली

मुद्रक : आकाशदीप प्रिन्टर्स, 20, अन्सारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली-2.

प्रस्तावना

व्यक्तियों की महानता विभिन्न प्रकार से मुखरित होती है। इसका वर्गीकरण करना भी कठिन है और इसको किसी एक प्रवाह रेखा में भी बांधा नहीं जा सकता। यह चतुर्दिक होती हैं और अपनी परिधि में अभिव्यक्ति के सभी रूपों को समेट लेती है। महानता की आभा से मंडित व्यक्तियों के जीवन से लिए गए इन दृष्टांतों में उनके गुण एक चमक उत्पन्न करते हैं। ये घटनाएं हमारी आत्मा को आलोकित कर देती हैं। हमें हार्दिक उत्साह देती हैं और हमारे अंतर में सामान्य अस्तित्व की सीमाओं को लांघकर कुछ ऐसा करने की ललक पैदा करती हैं जो हमें आंतरिक सुख प्रदान करे। इनसे केवल उनको ही आंतरिक हर्ष नहीं मिलता जो इन दृष्टांतों के मुख्य पात्र हैं बल्कि यह दृष्टांत उनको भी आतंरिक हर्ष से परिपूर्ण करते हैं जो इन घटनाओं के विषय में सुनते हैं अथवा पढ़ते हैं। दृष्टांतों को बताने के लिए मैंने सृजनशील लेखक के नाते संवादों की शैली का उपयोग किया है।

इन दृष्टांतों का रसास्वादन कीजिए। ये बच्चों और बूढ़ों दोनों के लिए हैं। इनका आकर्षण सार्वभौमिक है।

आर.के. मूर्ति

समर्पण

मेरे प्रिय मित्रों

राजन पाराशर

और

एन. कुंजू को

विषय-सूची

1.	स्वदेशी कौशल	1
2.	कथनी और करनी	6
3.	शह और मात	11
4.	भारतीय स्वतंत्रता का ध्वज	15
5.	सच्चा दोस्त	18
6.	विवेकपूर्ण निर्णय	22
7.	देश प्रेम सर्वोपरि	26
8.	स्वयं से पहले देश	30
9.	जेल से भागने की योजना	34
10.	ज्ञान ही शक्ति है	38
11.	महिला शान्ति दूत	42
12.	झण्डा अवश्य फहराएगा	47
13.	जीते जागते ध्वज	51
14.	कमाल का कारनामा	55
15.	अनोखा साहस	59
16.	सेर को सवा सेर	63
17.	सटीक उत्तर	66
18.	महाराजा या जनसेवक	68
19.	प्रेम की विजय	72
20.	शैतानों को पालतू बनाना	76
21.	वह खबर जो किसी अन्य के पास नहीं थी	81
22.	जैसे को तैसा	85
23.	'बोरडम' बचने का उपाय	88
24.	अप्रितम गेंदबाजी	92
25.	मास्टर स्ट्रोक	95

26.	भूतों के भय पर विजय	99
27.	सुगंधित पुष्प	102
28.	दरिद्र नारायण	106
29.	जीता-जागता उपहार	110
30.	वापसी	113
31.	जयपुर पांव	117
32.	सेवा के लिए समर्पित	121
33.	साक्षात देवी	125
34.	महात्मा के पद चिन्हों पर	130
35.	रात के प्रकाश में	134
36.	नया जीवन	138
37.	देशी होने का अभिमान	142
38.	साहस की विजय	147
39.	क्रोध का ज्वार	150
40.	कर्त्तव्य परायणता	154
41.	मौत के मुंह में	158

स्वदेशी कौशल

श्रीमती एनीबेसेण्ट पत्र पढ़कर क्रोध से उबल रही थीं। पत्र लार्ड पावेल का था। लार्ड बेडन पावेल ने इंग्लैंड में 'बॉयज स्काउट' आन्दोलन की स्थापना की थी। श्रीमती एनीबेसेंण्ट ने बेडन पावेल को पत्र द्वारा भारत में इस आन्दोलन का विस्तार करने का अनुरोध किया था। लेकिन लार्ड बेडन पावेल ने इस अनुरोध को अस्वीकार कर दिया और वह भी सारहीन तर्क पर। उन्होंने लिखा था कि इस आन्दोलन को शुरू करने के लिए भारत में जितने अंग्रेज हैं वे पर्याप्त नहीं हैं।

श्रीमती एनीबेसेण्ट को अपना क्रोध शान्त करने में कुछ समय लगा।

वे सोच रही थीं कि उनके अनुरोध को इस प्रकार अस्वीकार किए जाने पर अब क्या किया जाए? वे ऐसी महिला नहीं थी कि अपने अनुरोध का नकारात्मक उत्तर स्वीकार करें। मन में वे इस योजना को साकार रूप देने के लिए कृतसंकल्प थी। बाहर से कोई सहायता न मिले तो न सही। इस कार्य के लिए उन्होंने स्थानीय प्रतिभाओं का उपयोग करने की ठानी। यह विचार आते ही वे मुस्कुराईं। यह अस्वीकृति भी उनके लिए चुनौती थी। वे भारतीयों में आत्म-निर्भरता विकसित करने की आवश्यकता पर बल देती रही थीं। भारतीयों की आत्मनिर्भरता की भावना को और सशक्त बनाने का संभवतया यह अच्छा अवसर था।

अपनी साड़ी के पल्लू को अपनी कमर पर कसकर वे अपने घर के बरामदे में टहलने लगीं। भारत उनकी नस-नस में रच-बस गया था। भारत उनका घर था। सभी भारतवासी उनके नाते रिश्तेदार थे। एनीबेसेण्ट भारत के स्वतंत्रता संघर्ष के लिए अपना जीवन समर्पित कर स्वयं की मुक्ति के लिए प्रयासरत थीं।

झोली पसार कर भीख मांगने से भारत को कोई स्वतंत्रता देने वाला नहीं था। उनको पता था कि ब्रिटेन भारत को अपने कब्जे में रखने के लिए कोई



भी चाल चलने से चूकने वाला नहीं है। भारत स्वतंत्र होगा ही, इस पर सब सहमत थे। लेकिन ऐसा होगा कब? यह सवाल हर व्यक्ति के मन में घुमड़ रहा था। स्वतंत्रता तब ही मिलेगी, जब भारतीय स्वतंत्रता के योग्य हो जाएंगे। उनमें अनुशासन आ जाएगा और उनमें आत्मबल आ जाएगा। उनको अपने अतीत के प्रति गौरव, अपने इतिहास, संस्कृति को अपने अंदर पुनः जाग्रत करना होगा।

भारत के युवा पीढ़ी में अनुशासन और आत्मविश्वास उत्पन्न करने के लिए श्रीमती एनीबेसेण्ट ने बालचर (स्काउट) आंदोलन को माध्यम बनाया।

उनका यह निर्णय बुद्धिमत्तापूर्ण था। वे जानतीं थीं कि बच्चों में कोई पूर्वाग्रह नहीं होता। उनके मन में ऐसी ग्रंथियां नहीं होती कि जिनको पार करना आवश्यक हो। उनका मानस पटल ऐसा कोरा कागज होता है जिस पर कोई भी अपने विचारों का रोपण कर सकता है।

श्रीमती एनीबेसेण्ट को आशा नहीं थी कि लॉर्ड बेडन पॉवेल उनका सुझाव ठुकरायेंगे। परन्तु लॉर्ड बेडन पॉवेल की अस्वीकृति पर श्रीमती एनीबेसेण्ट ने कोई सोच-विचार नहीं किया। उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे भारत में बालचर आन्दोलन की शुरुआत करेंगी। उनको लगा कि इसकी आवश्यकता है। छात्रों को बालचर बनाकर वे उनको प्रशिक्षित कर सकती हैं। उनमें अनुशासन की भावना भर सकती हैं। यह प्रशिक्षण उनको आत्मविश्वासी और आत्म-निर्भर बनायेगा। श्रीमती एनीबेसेण्ट का विश्वास था कि इन गुणों का बच्चों में होना आवश्यक है। बच्चे ही देश के भावी नागरिक हैं। भावी नागरिकों में इन गुणों का होना जरूरी है। ऐसा होने से भारत का स्वाधीनता आन्दोलन आगे बढ़ सकेगा, गति पकड़ सकेगा। बालचर आन्दोलन स्वतंत्रता प्राप्ति का एक साधन था।

श्रीमती एनीबेसेण्ट के मन में यह विचार घुमड़ रहा था कि बालचर आन्दोलन किस स्थान से शुरू किया जाए।

श्रीमती एनीबेसेण्ट ने स्काउटिंग आन्दोलन का विस्तृत अध्ययन किया। उन्होंने इसके बाद 'इण्डियन बॉयज स्काउट एसोसिएशन' की योजना बनाई। श्रीमती एनीबेसेण्ट से परिचित अनेक भारतीयों ने उनको इस योजना के लिए बधाई दी।

"यह कार्य ठीक है। बताइये मैं इस परियोजना में आपकी क्या सहायता कर सकता हूं?" तारिणी प्रसाद सिन्हा ने कहा।

हमारे पास पर्याप्त स्थानीय प्रतिभाएं हैं। बहुत से ऐसे भारतीय हैं जो

बच्चों को उचित ड्रिल सिखा सकते हैं। ऐसे पर्याप्त लोग हैं जो बच्चों को खेलकूद तथा अन्य साहसिक कार्यों में भाग लेने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। भारतीय विचार और दर्शन में निर्धनों की सेवा के विषय में बहुत कुछ कहा गया है। ऐसे अध्यापकों का अभाव नहीं है जो बच्चों को सहानुभूति, बलिदान की भावना तथा विश्व बंधुत्व का पाठ पढ़ा सकते हैं। एनीबेसेण्ट के एक घनिष्ठ सहयोगी ने उनसे कहा।

"मैं इस आन्दोलन में शामिल होने को तैयार हूं।" संजीव कामथ ने कहा।

इन शब्दों ने एनीबेसेण्ट के मन में रहा-सहा संशय भी दूर कर दिया। उन्होंने इण्डियन बॉयज स्काउट एसोसिएशन की स्थापना की। स्काउट एसोसिएशन के सदस्यों के लिए नियम भी बना दिए।

क्योंकि लार्ड बेडन पावेल ने स्काउट आन्दोलन के बारे में उनके सुझाव को अस्वीकार कर दिया था, इसलिए श्रीमती एनीबेसेण्ट इस आन्दोलन को अपने तरीके से चलाने के लिए स्वतंत्र थीं। उन्हें बच्चों से हैट लगाने को कहना ठीक नहीं लगा। भारत में छात्रों के सिर पर पगड़ी अच्छी लगती थी। उन्होंने हैट की जगह पगड़ी बांधने को कह दिया।

बालचर अर्थात स्काउट प्रायः गीत गाते हैं। यह देशभक्ति के गीत होते हैं। एनीबेसेण्ट ने नियम बनाया कि गाने केवल क्षेत्रीय भाषा में गाये जा सकते हैं। इसके पीछे उद्देश्य भी था। अपनी भाषा में बच्चों को गाना अधिक प्रेरित करता। स्कूलों ने यह आन्दोलन तत्काल अपना लिया। देशी रियासतों में भी यह आंदोलन फैल गया। प्रशिक्षण सुसंगठित था। भली पोशाक, सफाई, शिष्टता, नम्रता, सहानुभूति और सभी के साथ मैत्री भावना की सहायता से आंदोलन एक प्रभावी शक्ति के रूप में विकसित होने लगा।

लार्ड बेडन पावेल के भारत आने की खबर श्रीमती एनीबेसेण्ट के कानों तक पहुंची। उन्हें खुशी हुई। भारतीय बॉयज स्काउट के कौशल भरे सुघड़ प्रदर्शन पर लार्ड बेडन पावेल की कैसी प्रतिक्रिया होगी? क्या वे प्रसन्न होंगे? क्या वे यह स्वीकारं करेंगे कि उन्होंने श्रीमती एनीबेसेण्ट का सुझाव ठुकरा कर भूल की। ये सारे सवाल श्रीमती एनीबेसेण्ट के मन में आए। उन्होंने अपने सहयोगियों से सलाह ली।

अन्त में निश्चय किया गया कि लार्ड बेडन पावेल को भारतीय स्काउटों का 'मार्च पास्ट' देखने के लिए आमंत्रित किया जाए।

लार्ड बेडन पावेल ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। उन्हें भारतीय स्काउटों के प्रदर्शन से ऊंची आशाएं नहीं थी। वे समझते थे कि यह 'मार्च पास्ट' ज्यादा-से-ज्यादा बहुत हुआ तो साधारण होगा। लेकिन उनका अनुमान गलत था। जो कुछ उन्होंने देखा उसे देखकर उनको अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। भारतीय स्काउटों ने अत्यन्त व्यवस्थित ढंग से 'मार्च पास्ट' किया। गीतों में लय था। उनका हर कदम नपातुला था। एक बार भी कदम नहीं गड़बड़ाए। कोई गलती नहीं हुई। प्रदर्शन ऐसा था जिस पर लार्ड बेडन पावेल गर्व कर सकते थे।

ऐसे प्रतिभावान किशोरों के दल का अध्यक्ष बनने का अवसर खोकर उन्होंने कितनी बड़ी गलती की थी, वे अपने आपको कोस रहे थे। वे जरा झुके, उन्होंने एनीबेसेण्ट के कान में कहा, "इन भारतीय सपूतों को ब्रिटिश स्काउट आन्दोलन से संबद्ध करने के बारे में आपकी क्या राय है?"

एनीबेसेण्ट के कानों में इन शब्दों ने मधुर संगीत घोल दिया। इसी की उन्हें प्रतीक्षा थी। उन्होंने भारतीय प्रतिभा की मौलिक क्षमता सिद्ध कर दी थी। वे भारतीय आन्दोलन को अलग-थलग नहीं रखना चाहती थीं। वे मुस्कुराईं। उन्होंने आमंत्रण स्वीकार कर लिया। लार्ड बेडन पावेल ने श्रीमती एनीबेसेण्ट को भारत में स्काउटों का अवैतनिक कमिश्नर नियुक्त कर दिया। यह सम्मान था। उनकी खुशी का कारण यह था कि उन्होंने सिद्ध कर दिया कि भारतीय बच्चे विश्व में किसी से भी कम नहीं हैं।

कथनी और करनी

सन् 1920 और 1930 के दशक में राष्ट्रवादियों के कथित नरम दल को जो चिन्ता सता रही थी, वह थी गांधीजी का रवैया। वे चाहते थे कि विधान-मण्डल के माध्यम से सुधार किए जाएं। उन्हें आशा थी कि अगर विधान-मण्डलों के मंचों से लगातार दबाव डाला जाए तो ब्रिटिश राज जनता को अधिक-से-अधिक लोकतांत्रिक अधिकार देने को तैयार होता जाएगा। उन्हें आशा थी कि विधान-मण्डलों द्वारा ज्यादा और स्पष्ट लोकतांत्रिक अधिकार मिलने से जब भारत को स्वतंत्रता मिलेगी तो नेता देश का शासन संभालने में अधिक समर्थ होंगे।

श्री गोपालकृष्ण गोखले ने देश के नेतृत्व को संभालने के लिए गांधीजी को दक्षिण अफ्रीका से बुला लिया था। गांधीजी अहिंसक असहयोग के हथियार में विश्वास करते थे। उनकी दृष्टि में लड़ाई का प्राथमिक क्षेत्र सरकारी निकायों के बाहर था।

सन् 1920 में राष्ट्रवादियों में आपसी मतभेद ज्यादा बढ़ गए तो नरम दलीय नेता जयकर, साबरमती आश्रम पहुंचे। गांधीजी ने मधुर मुस्कान और हार्दिक आलिंगन के साथ उनका स्वागत किया। गांधीजी बिल्कुल स्वस्थ, चुस्त और शांतचित्त लग रहे थे। जयकर देखते ही समझ गए कि गांधीजी किस धातु के बने हैं। पहले से भी ज्यादा जयकर को भरोसा हो गया कि गांधीजी को नेतृत्व की बागडोर सौंपकर श्री गोखले ने कितनी दूरदर्शिता के साथ अपने उत्तराधिकारी का चयन किया है।

दोनों नेताओं ने एक दूसरे का अभिवादन किया और गांधीजी जयकर को अपने साथ बातचीत के लिए एक कोने में ले गए और बैठाया। आश्रम का एक सदस्य जल्दी से रसोईघर की ओर अतिथि के लिए एक गिलास दूध लाने भागा।

रसोई में जमीन पर एक अधेड़ आयु की महिला बैठी आटा गूंथ रही

थी। उनकी बगल में एक पात्र में उबले आलू रखे थे। वे अपने काम में लगी थीं तभी उन्होंने किसी के चुपके से आने की आहट सुनी। उन्होंने अपना सिर उठाया और देखा कि एक छोटी-सी लड़की रसोईघर के दरवाजे पर खड़ी है।

"अम्मा. . ." लड़की ने महिला की तरफ मुस्कुरा के देखा।

"कैसी हो, बेटी?" महिला का चेहरा स्वागत में दमक उठा।

"अम्मा. . ." बच्ची कुछ कहना चाहती थी किन्तु कुछ हिचकिचा रही थी।

"हां", महिला ने आटा गूंथना बंद करके ऊपर देखा।

मीठी और धीमी आवाज में बच्ची ने कहा, "मुझे उबले आलुओं की सुगंध अच्छी लगती है।"

"शैतान लड़की। यह क्यों नहीं कहती कि उबला आलू तुझे चाहिए। यहां आओ। और अपने मन का आलू उठा लो", महिला ने अपने पास बुलाया।

"अम्मा, आप बड़ी अच्छी हो।"

"लड़की रसोई में आ गयी और उसने हंसते हुए काफी बड़ा आलू उठा लिया।

"रख ले, मेरी बिटिया" महिला ने उस बच्ची से कहा।

"जरूर! लेकिन मैं अकेली नहीं खा सकती। मैं इसे बापू के साथ खाऊंगी।" और लड़की भाग गयी। महिला की समझ में कुछ नहीं आया।

गांधीजी और जयकर साहब आपस में गंभीर वार्ता में संलग्न थे। वे राजनैतिक स्थिति का विश्लेषण कर रहे थे। दोनों अपना-अपना दृष्टिकोण बता रहे थे। वे यह समझने के लिए उत्सुक थे कि दोनों के बीच मतभेद कहां है जिससे कि समान रणनीति बनायी जा सके।

वे अपनी बातचीत में निमग्न थे। उन्हें पता नहीं चला कि कब एक छोटी-सी लड़की दौड़ती हुई उस कमरे में आई थी और बापू के साथ एक अजनबी को बैठा देख ठिठक गयी। उसने एक क्षण सोचा कि क्या करे। लेकिन उसके जाने के पहले बापू ने उसे देख लिया। गांधीजी ने उसे इशारे से अपने पास बुलाया। उन्होंने जयकर को बतलाया कि यह मेरी बच्ची है मैंने गोद लिया है। यह बहुत चंचल और शरारती है। ऊधम करना इसकी नस-नस में भरा है। यह बहुधा मुझे तंग करती है या मेरे साथ खिलवाड़ करती है। यह छोटी शैतान है या कह लीजिए प्यारा छोटा फरिश्ता है।

"उन्होंने अपनी आवाज धीमी कर ली जिससे केवल जयकर ही सुनें और कहा इसे देखकर कौन कहेगा कि बहुत से परम्परावादियों के अनुसार यह अछूत है?"

जयकर ने लड़की को गौर से देखा। लड़की साफ कपड़े पहने थी। उसमें आकर्षण था। हाथ में आलू था।

"यहां आओ।" फिर भी उसे दूर खड़ा देख कर गांधी ने उसे फिर बुलाया।



उसने अत्यन्त नम्रता से कहा, "बापू मुझे पता नहीं था कि एक मेहमान आपके पास बैठे हैं। मैं बाद में आपके पास आऊंगी।"

गांधीजी ने बच्ची को आश्वस्त किया, "ये कोई अजनबी नहीं हैं। हमारे बड़े अच्छे मित्र हैं। तुम संकोच मत करो।

लड़की दौड़कर बापू के पास आ गयी।

"बापू, देखो मेरे पास आलू है", लड़की ने कहा।

"शायद उबला हुआ", गांधीजी ने उत्तर दिया।

"आप ठीक समझ रहे हैं। मैं इसे आपके साथ खाना चाहती हूं।"

लड़की ने आधे आलू को अपने दोनों ओठों के बीच रख लिया। अजीब दृश्य था। आधे आलू ओठों के बीच में होने के कारण अब बच्ची कुछ बोल नहीं सकती थी।

अब बच्ची घुटने के बल बैठ गयी। उसने अपनी गर्दन गांधीजी की तरफ बढ़ा दी जिससे गांधीजी अपने हिस्से का आधा आलू बच्ची के मुंह के बाहर से ले लें।

जयकर थोड़ा पीछे हो गए। वे जानना चाहते थे कि गांधीजी जो कहते हैं उसका अपने जीवन में कितना पालन करते हैं। महात्मा गांधी मानव बंधुत्व की बात करते थे। इस अवसर पर जयकर यह देखना चाहते थे कि जातिवादी पूर्वाग्रहों से गांधीजी कितना मुक्त हो सके हैं। गांधीजी एक अछूत लड़की के मुंह का आलू खाएंगे?

गांधीजी ने आलू खा लिया और कहा, "धन्यवाद, बेटी!"

गांधीजी ने बड़े स्वाद से आलू खा लिया और संकेत से बताया, 'आलू बड़ा स्वादिष्ट है।' लड़की ने भी अपना हिस्सा खा लिया।

गांधीजी ने उससे थोड़ी सी चुटकी ली।

"ओह. . .आपकी चुटकी से बड़ा दर्द होता है।" लड़की ने दर्द का बनावटी नाटक किया।

गांधीजी ने हल्के से उसका हाथ पकड़ लिया कहा, "तुम बड़ी नटखट हो। शरारत करना कब बन्द करोगी?"

लड़की ने हंसते हुए कहा, "बापू, जब आप मुझसे शरारत करना

बंद कर देने के लिए कहेंगे।" इसके बाद वह हाथ हिला कर हंसते हुए भाग गयी।

गांधीजी उसे तब तक देखते रहे जब तक वह आंखों से ओझल नहीं हो गयी। गांधीजी जयकर की ओर मुड़े और कहने लगे, "बच्चे बड़े भोले होते हैं उनसे मेरा जीवन आनंदमय हो जाता है। देखिए, मेरी यह प्यारी बच्ची कितनी खुशदिल है। हमेशा कुछ-न-कुछ ऊधम करती रहती है। वह मुझे प्यार करती है और मैं उसे।"

जयकर ने सिर हिलाया। गांधीजी प्रसन्न दिखाई पड़े। गांधीजी जो कहते थे वही करते थे। उनकी कथनी और करनी में भेद नहीं होता था। उनके हृदय में मानव मात्र के लिए प्रेम था। उनके लिए कोई अछूत नहीं था। वे वास्तव में दिव्य पुरुष थे।

शह और मात

देशबंधु चित्तरंजनदास कोलकाता के विख्यात वकील और प्रमुख राष्ट्रवादी थे।

एक बार उन्हें अपने मुवक्किल का मुकदमा लड़ने एक जिला अदालत में जाना पड़ा। उन्होंने मामला जीत लिया। मुकदमे में बहस के लिए उन्हें खासी मोटी रकम मिली।

मुवक्किल उन्हें मोटर से रेलवे स्टेशन छोड़ने आया।

दास बाबू के पास केवल एक ब्रीफकेस था। उसमें उनके कुछ कपड़े, व्यक्तिगत आवश्यकता की कुछ वस्तुएं, दो पुस्तकें और धनराशि थी।

दोनों व्यक्ति स्टेशन पर रेलगाड़ी की प्रतीक्षा करने लगे। अंतत: रेलगाड़ी आयी। दास और उनके मुवक्किल ने फर्स्ट क्लास में प्रवेश किया। उन्होंने ब्रीफकेस सीट पर रख दिया। मुवक्किल तब तक बाहर प्लेटफार्म पर उतर गया। चितरंजन दास ने उसे नमस्कार करने के लिए खिड़की के बाहर देखा। इंजन ने सीटी दी। आवाज करते ही पहिए घूमने लगे। पहले धीरे और फिर तेजी से। जल्दी ही ट्रेन ने गति पकड़ ली।

दास बाबू ने अपने सहयात्री को देखा। वह अच्छे कपड़े पहने, बड़ी चुस्त-दुरुस्त महिला थी। लेकिन दास बाबू कुछ भी नहीं बोले। उन्होंने अपना ब्रीफकेस अपनी गोद में रख लिया। उसे खोला। वे अपने साथ जो पुस्तकें लाए थे। उनमें से एक निकाल ली। महिला यात्री ने देखा कि ब्रीफकेस में नोटों की कुछ गड्डियां हैं।

देशबंधु ने ब्रीफकेस बंद कर दिया। उसे अपने पास एक तरफ रख दिया। और इसके बाद पुस्तक पढ़ने लगे।

थोड़ी ही देर बाद उन्होंने कुछ आहट सुनी।

उन्होंने अपना सिर उठाया। देखा वह महिला सहयात्री उनके पास खिसक आयी है।

वे 'उंह' कहते हुए उपेक्षा से महिला यात्री के पास से दूर खिसक गए। सिर झुका लिया। पुस्तक पढ़ने में फिर तल्लीन हो गए। यात्रा में उन्हें उसका साथ रास नहीं आ रहा था और कम-से-कम इस अजनबी महिला का तो बिल्कुल नहीं। अचानक उनके कानों में महिला के यह शब्द पड़े, "सारी रकम मुझे दे दो।"



देशबंधु को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। उनके साथ एक लुटेरी महिला यात्रा कर रही थी।

वे अपनी पुस्तक पढ़ते रहे।

उस औरत ने दास बाबू के हाथ से पुस्तक छीन ली और उसे एक तरफ कर दिया। बोली, "सुना नहीं आपने। सारी नकदी मुझे दे दीजिए। वरना. . ." और वाक्य को अधूरा ही छोड़ दिया।

दास बाबू ने एक शब्द भी मुंह से नहीं निकाला।

वह चुप्पी से और चिढ़ गयी। और उसने जोर से बोलते हुए कहा, "मैं आपके पास की सारी नकदी चाहती हूं। अन्यथा मैं चेन खींचकर ट्रेन रुकवा लूंगी। अफसर आ जाएंगे। मैं उनसे कह दूंगी कि आप मुझसे छेड़छाड़ कर रहे थे।"

देशबंधु समझ गए कि वे मुसीबत में फंस गए हैं। संभवत: वह पेशेवर लुटेरी थी। निश्चय ही उसने पहले भी इस तरह कई लोगों को लूटा हो। इस बार भी वही चाल चली हो।

वे सोचने लगे कि इस संकट से कैसे निपटा जाए? उन्होंने पुस्तक बंद करके रख दी। उन्होंने अपने दाहिने कान को एक हाथ से इस तरह ढक लिया जैसे वे कम सुनते हों और उस औरत से कहा, "एक मिनट, मैडम. . .अब मेरा हाथ कान के पीछे है। शायद मैं अब आपकी बात सुन सकूं। जरा कम सुनता हूं। आप जरा जोर से बोलिए।"

बात औरत की समझ में आयी।

जब पहली बार औरत ने अपनी बात कही थी तो कोई उत्तर न पाकर वह उलझन में पड़ गयी थी। उसने तय कर लिया इस बार वह जोर से बोलेगी जिससे दास बाबू उसकी बात सुन कर समझ लें। उसको ऐसा कोई कारण समझ में नहीं आया कि यह आदमी किसी अलग तरीके का व्यवहार क़रेगा। पहले उसकी यह चाल हमेशा सफल रही थी। उसे पक्का भरोसा था कि उसे रुपया मिल जाएगा।

उसने अपनी धमकी ऊंची आवाज में दोहरा दी।

चितरंजनदास ने ऐसी मुद्रा बनायी जैसे उनकी समझ में कुछ नहीं आया। उन्होंने क्षमा मांगते हुए कहा, "माफ कीजिए, मैडम, आपने जो कुछ कहा वह मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आया। आपकी बात समझने के लिए क्या करूं? समझ में नहीं आता।"

औरत समझ गयी कि वह मुश्किल में पड़ गयी है। क्या करे? इसके बाद दास बाबू जोरों से मुस्कुराए। "अच्छा ऐसा करता हूं। पहले यह बात मेरे दिमाग में क्यों नहीं आयी। एक मिनट, मैडम!" अपना ब्रीफकेस खोलते हुए उन्होंने कहा।

उन्होंने छोटा-सा कागज का पैड निकाला। पैड में से दास बाबू ने एक कागज फाड़ा और कलम के साथ उस औरत को देते हुए हंसे। "आप अपनी बात इस कागज पर क्यों नहीं लिख देतीं", मुस्कुराते हुए वे बोले।

औरत भी मुस्कुराई। "धन्यवाद", उस औरत ने कहा। इसके बाद उसने स्पष्ट और दृढ़तापूर्वक लिखा, "जितनी भी रकम आपके पास है, वह सब मेरे हवाले कर दीजिए। अन्यथा मैं ट्रेन की जंजीर खींचकर गाड़ी रुकवा दूंगी। जब रेलवे अधिकारी आएंगे तो मैं उनसे कहूंगी कि आप मुझसे अश्लील छेड़छाड़ कर रहे थे। आप बड़ी कठिनाई में पड़ जांएगे।"

दास बाबू धैर्यपूर्वक सब सुनते रहे।

उस औरत ने लिखने के बाद कागज के टुकड़े को दास बाबू को वापस कर दिया। उन्होंने उसे पढ़ा और मोड़कर अपनी जेब में रख लिया और राहत की सांस ली।

"यह रकम मुझे दे दीजिए।" औरत बार-बार कह रही थी।

"मैडम, क्या मैं अब वह काम करूं जो शायद आपने पहले कभी नहीं किया। मैं अब जंजीर खींचता हूं। जब रेलवे अधिकारी आएंगे तो आपको उनके हवाले कर दूंगा। और, आपकी सूचना के लिए आपको बता दूं, मैं बहरा नहीं हूं, मैडम।" मैंने केवल रिकार्ड के लिए वह संदेश आपसे लिखवा लिया था। अब वह कागज मेरे पास है। आप बच नहीं सकतीं।"

यह कहते हुए दास बाबू चेन के पास पहुंच गए और वह औरत उनके चरणों में गिर पड़ी।

भारतीय स्वतंत्रता का ध्वज

अगस्त 1907 की बात है। जर्मनी में एक छोटा सा कस्बा है, स्टुटगार्ड। उस दिन उसमें बड़ी चहल-पहल थी। दुनिया भर के लोग वहां आए हुए थे। उन्हें वहां अंतर्राष्ट्रीय सोशलिस्ट कांग्रेस में भाग लेना था। उनमें मैडम भीकाजी कामा भी थीं।

कांग्रेस में हिस्सा लेने वाली वे एकमात्र भारतीय थीं। उन दिनों भारत ब्रिटिश शासन के अधीन था। अतः मैडम कामा को उसका प्रतिनिधित्व करने का कोई अधिकार नहीं था। वास्तव में किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में किसी उपनिवेश का कोई प्रतिनिधित्व होता ही नहीं था। इसलिए मैडम कामा अपने खर्चे पर स्वयं कांग्रेस में शामिल होने गयी थीं। वे सम्मेलन में भारतीय स्वतंत्रता का प्रचार करने गई थीं। उन्होंने अपने आप इसका फैसला किया था।

वे लगभग पांच वर्ष से यूरोप में थीं। अपने प्रवास में उन्होंने श्यामजी कृष्ण वर्मा, वीर सावरकर, वीरेन देसाई, वी.वी.एस. अय्यर और मुकुन्द देसाई जैसे राष्ट्रवादियों से भेंट की थी। ये राष्ट्रवादी चाहते थे कि भारत को मेजिनी और गैरीबाल्डी जैसे देशभक्तों से प्रेरणा लेनी चाहिए। उन्होंने इटली की स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया था। उनका विचार था कि भारत पर शासन करने वाले कभी अपनी इच्छा से भारत छोड़कर नहीं जाएंगे। उन्हें भारत से बाहर निकालना पड़ेगा। यूरोप में प्रवास करने वाले भारतीय ब्रिटिश शासकों के विरुद्ध हिंसात्मक आन्दोलन के भी खिलाफ नहीं थे। भारतीय स्वाधीनता के लिए वे कुछ भी करने को तैयार थे।

इन निस्वार्थ राष्ट्रवादियों के प्रतिनिधि के रूप में ही मैडम कामा स्टुटगार्ड आयी थीं। वे सोचती थीं कि वे भारतीय स्वतंत्रता के पक्ष को सशक्त ढंग से सम्मेलन में प्रस्तुत कर सकेंगी। उन्हें भरोसा था कि यूरोप का अभिजात्य वर्ग उपनिवेशवाद के खिलाफ है। उनमें से कुछ लोग, उन्हें पता लगा था, कांग्रेस

में हिस्सा लेने वाले थे। यह एक अतिरिक्त कारण था जिसकी वजह से उन्होंने स्टुटगार्ड कांग्रेस में हिस्सा लेने का फैसला किया था।

कांग्रेस के उद्‌घाटन सत्र में ही उन्हें एक आघात लगा।

कांग्रेस में हर देश के प्रतिनिधि ने पहले अपने देश का झंडा फहराया उसका अभिवादन किया और उसके बाद अपना भाषण दिया।

मैडम कामा थोड़ी उद्विग्न हो गयीं। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए। भारत का अपना कोई ध्वज नहीं था। पुनरुत्थानशील भारत के ध्वज के बिना भाषण देना उन्हें स्वीकार्य नहीं था। उन्होंने भारत का ध्वज बनाने का फैसला किया। वे यह झंडा फहराएंगी। उसका अभिवादन करेंगी और उसके बाद ही सलामी देंगी। कांग्रेस में आए प्रतिनिधियों से जो कहना चाहेंगी, अपने व्याख्यान में कहेंगी।

मैडम कामा ने स्मरण किया कि पेरिस में स्वाधीन भारत के झंडे के बारे में कई बार विचार-विमर्श किया गया था। इनमें कई राष्ट्रभक्त शामिल हुए थे। उन लोगों ने ध्वज की रूपरेखा भी बनायी थी। इसके अनुसार यह ध्वज तिरंगा था। इसमें हरा, भगवा और लाल रंग की तीनों पट्टियां सीधी होंगी। हरी पट्टी में आठ कमल के फूल होंगे। भगवा पट्टी पर 'वंदे मातरम्' लिखा होगा। लाल पट्टी पर दाहिनी ओर स्वर्णिम सूर्य और बायीं ओर अर्धचन्द्र ध्वज की शोभा बढ़ाएगा।

मैडम कामा को झंडा बनाने में कोई कठिनाई नहीं हुई। झंडा बनाकर उन्होंने उसे लपेटा और कांग्रेस स्थल पर वापस आ गयीं। उनके पास ध्वज था जिसे वे अपना कह सकती थीं। ऐसा झंडा जो स्वतंत्र भारत का प्रतीक था।

वे लौट कर चुपचाप अपने स्थान पर बैठ गयीं। जो बहस चल रही थी उसे सुनती रहीं। जब उन्हें बोलने के लिए आमंत्रित किया गया, तब वे खड़ी हुईं और अपने हाथ में लपेटा हुआ झंडा लिए हुए निश्चित स्थल पर पहुंचीं। उन्होंने अपने हाथ में तिरंगे झंडे को फहराया और उसका अभिवादन किया। क्षणभर के लिए उनका गला रुंध गया। वे अत्यंत भावुक हो गयी थीं उनका सिर गर्व से तना था। उनकी आंखों में आंसू भरे थे।

शीघ्र ही, उन्होंने अपने भावातिरेक पर काबू पा लिया। उनकी गूंजती आवाज आसपास के वातावरण में भर गयी। वे बोलीं, यह ध्वज भारत का है। . . .देखिए उसका जन्म हो गया है। यह भारत के शहीद युवकों के रक्त

से अभिषिक्त है। मैं आपसे विनय करती हूं आप खड़े होकर इस ध्वज को प्रणाम करें।

इसके बाद वे भारत को दासता में रखने के लिए इंग्लैंड पर टूट पड़ीं। उन्होंने इंगलैंड पर प्रतिवर्ष साठ करोड़ रुपए भारत से ले जाने का आरोप लगाया और कहा कि इंगलैंड भारत के संसाधनों का शोषण कर रहा है। अधिक-से-अधिक भारतीयों को दिन प्रतिदिन निर्धनता में धकेलता जा रहा है। उन्होंने पूछा कि उपनिवेशवाद को ब्रिटेन के प्रजातंत्र के साथ कैसे जोड़ा जा सकता है?

इसके बाद उन्होंने कांग्रेस से अनुरोध किया कि वह उनके इस प्रस्ताव का समर्थन करे कि भारत में ब्रिटेन का शासन निश्चित रूप से विनाशकारी और भारत के हितों के लिए अनिष्टकारी है। विश्व के समस्त स्वतंत्रता के समर्थक लोगों को भारत में रहने वाली विश्व की बीस प्रतिशत आबादी को गुलामी से मुक्त कराने में सहयोग करना चाहिए क्योंकि एक आदर्श सामाजिक राज्य की यह मांग है कि जनता पर आततायी और अत्याचारी शासन नहीं होना चाहिए।

ब्रिटेन का प्रतिनिधित्व करने वाले रेमजे मैकडोनाल्ड ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। उनका मत था कि सोशलिस्ट कांग्रेस भारत की स्वतंत्रता का प्रश्न उठाने का मंच नहीं है। लेकिन अधिकांश प्रतिनिधियों ने मैडम कामा का समर्थन किया। उनका विचार था कि स्वतंत्रता के उद्देश्य का समर्थन करना किसी प्रकार अनुचित नहीं है। इसके विपरीत हम सब प्रतिनिधियों का कर्त्तव्य है कि हम मैडम कामा के प्रस्ताव का रचनात्मक समर्थन करें। उनका तर्क था कि बिना स्वतंत्रता के समाजवाद निरर्थक है।

प्रस्ताव का बहुमत से कांग्रेस ने समर्थन किया। मैडम कामा ने ऊपर देखा। उन्होंने देखा अन्य देशों के साथ भारत का तिरंगा शान से फहरा रहा था। उनके चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ गयी। उन्होंने ठीक ही कहा था कि "यह झंडा भारत की स्वाधीनता का प्रतीक है।" स्वतंत्रता के पश्चात यथोचित परिवर्तन के बाद तिरंगा ही भारत का राष्ट्रीय ध्वज बना।

सच्चा दोस्त

सारे भारत के बच्चे पंडित नेहरू को अपना दोस्त मानते थे। वे उन्हें चाचा नेहरू कहते थे। उनका (पं. नेहरू) जन्म दिवस आज भी बाल दिवस के रूप में मनाया जाता है। बच्चे उन्हें ऐसा व्यक्ति मानते थे जिसके साथ वे हंसी-मजाक कर सकते थे। आंख-मिचौनी खेल सकते थे और चुटकलों को आनंद से सुनते थे। तात्पर्य यह है कि बच्चे उनके साथ आत्मीयता का अनुभव करते थे। नेहरू जी उन लोगों में से नहीं थे जिनके अंदर बचपन तिरोहित हो चुका था। उनका बचपन हमेशा मुखरित रहा।

एक बार वे इलाहाबाद पहुंचे। उनके कार्यक्रम में आनन्द भवन में बच्चों से मिलना भी शामिल था। जब नेहरू जी की कार आनन्द भवन पहुंची तो बच्चे उनकी तरफ दौड़े। वे अपने हाथ उठाकर उनकी तरफ दौड़े जा रहे थे, वे चिल्ला रहे थे। उनकी आवाज से खुशी टपक रही थी। "चाचा नेहरू. . .चाचा नेहरू।" सब बच्चों ने उन्हें घेर लिया था। वे कह रहे थे, "हम लोगों को आपसे मिलकर बहुत खुशी हो रही है।" नेहरूजी कार से बाहर आए। उन्होंने बच्चों को गले से लगाया। उन्हें चूमा। प्यार किया।

"आप सब कैसे हैं? आशा है, आप सब खूब मन लगाकर पढ़ रहे होंगे?" नेहरूजी ने उनसे पूछा।

"हां, चाचाजी!" . . .बच्चों ने उत्तर दिया।

"तुम लोग क्या खेलते हो?" नेहरूजी ने पूछा।

"गुल्ली डंडा. . ." एक बच्चे ने फौरन उत्तर दिया।

"बैडमिण्टन. . ." दूसरे ने कहा।

"रस्सी कूदना. . ." एक बालिका ने कहा।

"बहुत अच्छा. . .।" नेहरूजी बोले. . . "पढ़ाई की तरह अच्छे खेल

भी जरूरी हैं। जैसे पढ़ाई जरूरी है, ख़ेल भी जरूरी है। मुझे खुशी है तुम लोग खेलकूद में हिस्सा लेते हो। घूमना भी चाहिए, जितना घूम सको। प्रकृति को भी देखना चाहिए। आसपास के पेड़, फूल, पौधे देखने चाहिए। ये कितने रंग-बिरंगे होते हैं। तुमने तितलियां देखी हैं? लगता है, इन्द्रधनुष उड़ रहा है।" नेहरूजी को बच्चों के साथ प्रकृति के बारे में चर्चा करने में बड़ा रास आता था क्योंकि वे स्वयं भी प्रकृति से बड़ा प्रेम करते थे।

"अब मुझे चलना चाहिए, गुड लक. . ." नेहरू जी वापस चलने वाले थे, तभी उन्हें ध्यान आया कि उन्होंने बच्चों से यह तो पूछा ही नहीं कि बच्चों की कोई समस्या तो नहीं है। वे रुक गए और बच्चों की तरफ मुड़े। पूछा, "ओह मैं यह पूछना तो भूल ही गया कि तुम लोगों की कोई समस्या अथवा कठिनाई तो नहीं है। तुम सब लोग प्रसन्न तो हो। मुझे आशा है कि तुम सब प्रसन्न हो और तुम्हें कोई तकलीफ नहीं है।"

बच्चे एक दूसरे का मुंह देखने लगे। वे सोचने लगे, क्या कहें। तभी बच्चों में से एक चतुर बालक ने तय किया कि वह बोलेगा।

"चाचाजी।"

"हां, बेटा।"

"हमें एक छोटी-सी तकलीफ है। वर्षा के मौसम में जब हम स्कूल जाते हैं तो हमारी किताबें भीग जाती हैं, हम भीग जाते हैं। भीगने की परवाह नहीं है। हमें बरसात में भीगना अच्छा लगता है। पानी के छोटे-छोटे गड्ढों में कूदकर चलना भी अच्छा लगता है। हम जब वर्षा की बूंदों में भींगते हैं तो हमें खुशी होती है। लेकिन हमारी पुस्तकें लगता है भीगना पसन्द नहीं करती। उनकी शक्ल बिगड़ जाती है। उन पर जगह-जगह निशान पड़ जाते हैं। और जब हम उन्हें सुखा लेते हैं तब भी वे पुरानी और गन्दी लगती हैं।"

नेहरू जी उस लड़के को ध्यान से देखते रहे। बच्चों की आवश्यकता उनकी समझ में आ गई।

"एह। . . .इस बारे में हम कुछ करेंगे। मैं जान गया कि तुम लोग अपनी किताबें साफ रखना चाहते हो। . . .यह स्वाभाविक भी है।" नेहरू जी मुड़े। उन्होंने एक बालिका की पीठ थपथपायी, हल्के से बच्चों को शाबाशी दी। बच्ची की फ्राक की सलवट ठीक की। बच्चों को यह बहुत अच्छा लगा। उनको खुशी हुई।

"चाचा नेहरू अमर रहें।" . . .बच्चों ने उन्हें इस नारे से विदा किया।

"याद रखिएगा हम अपनी पुस्तकें भीगने से बचाना चाहते हैं।" लड़के ने जोर से कहा। नेहरू फिर मुड़े, वापस लौटे और एक मिनट के लिए रुककर उस बच्चे की ओर मुड़कर कहा "अच्छा"। बच्चे अपने विद्यालय में चले गए। उनकी प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं थी। एक लड़की ने कहा "उन्होंने मेरे बाल संवारे जैसे वरुण करता है।" दूसरी लड़की ने कहा कि "उन्होंने मेरे भाई की



तरह गाल को धीरे से चुटकी की और हंसे।" एक लड़का दौड़कर आया। उसने कहा, "मेरी पीठ पर चाचा ने यहां थपथपाया था।" सभी चाचा नेहरू के बारे में बातें कर रहे थे और कह रहे थे कि उन सबको कितना प्यार करते हैं।

समय बीतता गया।

बच्चे अकसर नेहरूजी से भेंट के बारे में आपस में बातें करते थे। जिस लड़के ने चाचा से अपनी किताबें भीगने की बात कही थी, वह बहुधा सोचता था कि पता नहीं प्रधानमंत्री को मेरी बात याद भी रही या नहीं। चाचा नेहरू बहुत व्यस्त रहते हैं। वे बच्चों की बात शायद भूल गए हों।

और तब एक दिन प्रधानमंत्री के दफ्तर से एक पार्सल आया और स्कूल के प्रधान अध्यापक ने उसे प्राप्त किया। उसमें एक दर्जन बरसातियां थीं। साथ में, प्रधान अध्यापक के लिए एक पत्र भी था। उसमें लिखा था कि ये बरसातियां उन बच्चों में बांट दी जाएं जो नेहरूजी से उनकी पिछली यात्रा में इलाहाबाद में मिले थे। हेडमास्टर ने सब बच्चों को बुलाया। बच्चों को देखकर वे मुस्कुराए और कहा, "बताओ चाचा नेहरू ने आप सब के लिए क्या भेजा है?" बच्चों ने कुछ क्षण चुप रहने के बाद एक साथ चिल्ला कर कहा, "बरसातियां!"

विवेकपूर्ण निर्णय

सरदार वल्लभ भाई पटेल दुविधा में थे। उन्होंने फाइल उठाई और खोल ली। उन्होंने उसमें लिखा सुझाव पढ़ा। सुझाव उनके अनुमोदन के लिए था। केन्द्रीय सूचना मंत्रालय, प्रसिद्ध उर्दू शायर 'जोश मलीहाबादी' को मासिक पत्रिका 'आजकल' का सम्पादक नियुक्त करना चाहता था।

यह ऐसा प्रस्ताव था जिससे सरदार पटेल तत्काल सहमत नहीं हो पा रहे थे।

इसमें संदेह नहीं कि जोश उर्दू के प्रख्यात लेखक थे। उर्दू साहित्य जगत में उनका ऊंचा स्थान था। अतएव वह पत्र के सम्पादक के रूप में काम करने के लिए उपयुक्त व्यक्ति थे।

लेकिन जोश के राजनीतिक विचार इसमें बाधक थे। उनकी रचनाओं का झुकाव साम्यवाद की ओर था।

सरदार अभी इसी समस्या पर विचार कर रहे थे कि शंकर ने कमरे में प्रवेश किया। शंकर उनके व्यक्तिगत स्टाफ में थे।

"नमस्ते, सरदार साहब!" शंकर ने गृहमंत्री का अभिवादन किया।

"शंकर"! . . . सरदार पटेल ने फाइल के ऊपर से तनिक सिर उठाया और थोड़ा मुस्कुराए।

शंकर ने कुछ देर प्रतीक्षा की। सरदार ने पूछा, "आपने तो जोश मलीहाबादी की शायरी अवश्य पढ़ी होगी।"

"जी सर। वे उर्दू शायरी के उस्ताद हैं। वह शब्दों द्वारा चमत्कार करते हैं। उनकी शैली बड़ी सरल होती है। उनकी शायरी सीधे दिल को छूती है। उर्दू शायरी पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा है। उर्दू साहित्य संसार के आकाश में वे सदैव तारे की तरह चमकते रहेंगे।" शंकर ने उत्तर दिया।



सरदार पटेल ने कहा, "लगता है कि आप उनका बड़ा आदर और सम्मान करते हैं।

"बेशक, सर। उनके स्वर में जनता की भावनाएं प्रगट होती हैं। उनकी शायरी में आम लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति होती है। वे अन्याय और विषमताओं के खिलाफ अपनी आवाज बुलन्द करते हैं। वह सबके लिए न्याय चाहते हैं। सामाजिक न्याय के लिए जब वे बोलते हैं तो वे योद्धा लगते हैं।" शंकर ने कहा।

"हां, यह बात हुई न। क्या यह सच है कि वह कम्युनिस्टों की तरह सोचते हैं।"

"निस्संदेह, उनका झुकाव कम्युनिस्ट विचारधारा की ओर है।" . . . शंकर ने माना।

"क्या आप ऐसे आदमी को सरकारी कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया जाना ठीक मानते हैं। क्या उसे सरकारी पद पर रखा जा सकता है?"

"क्या?"

मेरे सामने प्रस्ताव आया है कि जोश मलीहाबादी को उर्दू 'आजकल' का सम्पादक बना दिया जाए।

"इसके लिए वह उपयुक्त व्यक्ति हैं, सर!"

"भले ही वे कम्युनिस्ट विचारधारा से सहानुभूति रखें", "जी सर!"

"मुझे पूरा भरोसा नहीं होता। लेकिन मैं इस पद के लिए उनके दावे को अस्वीकार भी नहीं कर सकता। उनके दावे की उपेक्षा नहीं कर सकता।" यह कहकर सरदार पटेल कुछ क्षणों के लिए चुप हो गए। इसके बाद उन्होंने शंकर से जोश मलीहाबादी की कुछ कविताएं पढ़ने को कहा, "हो सकता है उनकी कुछ कविताएं सुनने के बाद मैं कोई फैसला कर सकूं।" पटेल ने कहा।

"मुझे उनकी कुछ कविताएं याद हैं", शंकर ने कहा।

"कोई बात नहीं। जो तुम्हें याद हो वही सुनाओ। तुम्हारे ऊपर उनकी शायरी का इतना गहरा असर पड़ा है, इसलिए मैं जानता हूं, तुम्हें कुछ तो याद होंगी ही।"

एक मिनट के लिए शंकर चुप हो गए। फिर उन्होंने मलीहाबादी की वे

नज़्में सुनाईं जो उन्हें याद थीं। जब शंकर ने सुनाना बंद कर दिया तो सरदार पटेल कुर्सी पर सीधे होकर बैठ गए। वे बड़ी राहत महसूस कर रहे थे। उनकी आशंकाएं समाप्त हो गईं।

"धन्यवाद,. . .उन्हें ले लो। जोश को नियुक्त कर दो। 'आफर' भेज दो। अब मुझे विश्वास हो गया कि वे बहुत अच्छी पत्रिका निकाल सकेंगे।" सरदार पटेल ने आंखें उठाईं और शंकर की आंखों में सीधे देखते हुए बोले।

शंकर प्रतीक्षा करने लगे। वे जानने को उत्सुक थे कि गृहमंत्री के मन में क्या है?

"लेकिन मैं चाहता हूं कि तुम जोश से बात कर लो। मैं चाहता हूं कि तुम उनसे यह कह दो कि उनके सरकारी दायित्व के निर्वाह में उनकी व्यक्तिगत विचारधारा आड़े नहीं आनी चाहिए।" सरदार पटेल ने अपने मन की बात स्पष्ट कर दी।

शंकर ने अनुभव कर लिया कि यह फैसला करना सरदार पटेल के लिए कितना कठिन रहा होगा। सरदार पटेल वामपंथी विचारधारा वालों को संदेह की दृष्टि से देखते थे।

इतने पर भी उन्होंने व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों को फैसला करने में बाधक नहीं बनने दिया। इस मौके पर ही नहीं अन्य अवसरों पर भी उन्होंने इसी तरह भावनाओं के स्थान पर विवेक से काम लिया।

देश प्रेम सर्वोपरि

स्वाधीनता भारी कीमत मांगती है।

भारत के राष्ट्रभक्त यह कीमत चुकाने को तत्पर थे।

महात्मा गांधी ने 'भारत छोड़ो' आंदोलन की योजना प्रस्तुत की। उन्होंने आंदोलन शुरू करने के लिए तारीख भी तय कर दी। वह तारीख थी 9 अगस्त, 1942।

ब्रिटिश शासकों ने एक दिन पहले ही कार्रवाई शुरू कर दी। महात्मा गांधी, पंडित नेहरू, मौलाना आजाद, सरोजिनी नायडू तथा अन्य बहुत से राष्ट्रवादियों को गिरफ्तार कर लिया।

मौलाना आजाद और पंडित नेहरू के साथ अन्य कई स्वतंत्रता सेनानियों को अहमदनगर किले में बंद कर दिया गया।

मौलाना आजाद ने स्थिति की विडम्बना महसूस की। जीवन एक विचित्र प्रकार का आवागमन बन गया था। घर से जेल, जेल से घर और फिर जेल में वापस। अहमदनगर किले में पहुंचाए जाने के एक दिन बाद उन्होंने अपने एक मित्र को लिखा था . . .'नौ मास पूर्व नैनी जेल से मुझे छोड़ा गया था और एक दिन पूर्व 9 अगस्त, 1942, को मुझे फिर अहमदनगर किले में बंद कर दिया गया।'

आजाद को अपने ऊपर लगे प्रतिबंधों की परवाह नहीं थी। वे देश की स्वतंत्रता के लिए सर्वोच्च मूल्य चुका रहे थे। वे अपनी पत्नी जुलेखा को बहुत चाहते थे लेकिन देश उन्हें पत्नी से भी अधिक प्रिय था।

उन्हें जुलेखा से सहानुभूति थी। बहुधा जुलेखा को सारी जिम्मेदारी स्वयं ही निभानी पड़ती थी। आजाद साहब अक्सर दौरों पर रहते थे या जेल में। जुलेखा भी अपने पति की भांति देशप्रेम से ओतप्रोत थीं। वे हर तरह से उनकी

देश के लिए सब कुछ न्यौछावर कर देने की भावना को और सुदृढ़ बनाने में सहायता करती थी।

मौलाना आजाद को अपनी पत्नी से अलग रहने की तकलीफ बर्दाश्त करने में इससे सहायता मिलती थी। जब आजाद साहब को अहमदनगर किले में बंद किया गया तब उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि उनको कितने दिन वहां रहना पड़ेगा यह नजरबंदी कुछ महीने या ज्यादा समय के लिए भी हो सकती थी।

जेल में समय अपनी गति से बीतता गया।

जेल में वे अपना समय, बहुधा पंडित नेहरू अथवा अन्य राष्ट्रवादी नेताओं के साथ बिताते थे या फिर अक्सर पढ़ते थे। नमाज तो अनिवार्य थी ही जब मूड बनता था तो अपने विचारों को लिखते भी थे।

जेल में गौरैया उनका साथ देती थीं। वे कमरे में घुस आतीं। अक्सर वे एक दूसरे के पीछे दौड़तीं। चहचहातीं और कभी बड़ा शोर मचाती थीं। कभी-कभी दो गौरैयाएं किसी पेड़ की टहनी पर बैठ जातीं और अपनी चोंचें एक दूसरे से लड़ातीं। उन्हें अपने आसपास की दुनिया की कोई परवाह नहीं थी।

जेल में जीवन सपाट चलता था।

एक दिन मौलाना एक किताब पढ़ने में डूबे थे। तभी उन्होंने दरवाजे पर हल्की थपथपाहट सुनी। उन्होंने किताब से अपना सिर उठाया। और दरवाजा खोला। दरवाजे पर जेल सुपरिटेण्डेंट खड़े थे। वे अपनी वर्दी में थे।

हल्की-सी मुस्कुराहट के साथ उन्होंने अधिकारी का स्वागत किया। "तशरीफ लाइए" आजाद साहब ने कहा।

अधिकारी कमरे के अन्दर आए। उनके हाथ में एक अखबार था। मौलाना साहब ने उसे देखा लेकिन कुछ भी कहा नहीं।

दबी जबान में अधिकारी ने कहा, "यह आज का अखबार है, इसमें आपके लिए एक महत्वपूर्ण खबर छपी है, सर!"

"शुक्रिया! बहुत शुक्रिया!" मौलाना ने बड़ी शिष्टता से उत्तर दिया और अधिकारी से कहा कि अखबार बगल में रखी मेज पर रख दें।

अधिकारी ने अखबार मेज पर रख दिया और चुपचाप कमरे के बाहर चला गया।

मौलाना ने अखबार उठाया। मौलाना ने सोचा कि इसमें ऐसा क्या है

जो मेरी विशेष रुचि का है? उन्होंने अखबार पढ़ना शुरू किया। उन्हें तब अपने जीवन का सबसे बड़ा आघात लगा। उनके हाथ से अखबार छूट गया। वे सोफे में धंस गए। हृदय दुख से अभिभूत हो गया। उन्होंने समझ लिया कि उन्हें अपने हृदय को व्यक्तिगत दुख का समाचार सुनने के लिए सुदृढ़ करना होगा।

उन्होंने अपनी पत्नी के विषय में सोचना आरंभ किया। वे सुखमय दिन याद आए जो पत्नी के साथ बिताए थे। अतीत ने उन्हें अपने पाश में बांध लिया था।

तभी कमरे में, नेहरूजी ने प्रवेश किया। उन्हें यह समझने में विलंब नहीं लगा कि मौलाना गहरे विचार सागर में डूबे हैं। क्या बात है? नेहरूजी ने पूछा और मौलना के बगल में बैठ गए। मौलाना ने उन्हें बताया कि जुलेखा बहुत गंभीर रूप से बीमार है।



पण्डित नेहरू ने उन्हें सलाह दी कि वे 'पैरोल' पर कुछ दिन के लिए रिहाई मांग लें। वे फौरन जाएं और पत्नी को देखें। इससे दोनों को राहत मिलेगी।

मौलाना आजाद ने तुरंत कोई उत्तर नहीं दिया।

वे कुछ देर सुझाव पर गौर करते रहे। फिर बोले, "नहीं मैं पैरोल पर रिहाई नहीं मांगूगा", उनकी आवाज में भारीपन तो था लेकिन दृढ़ता भी थी, "मैं उनसे भीख नहीं मांगूगा, देश के दुश्मनों से, दया की याचना नहीं करूंगा। यह नहीं करूंगा।"

पण्डित नेहरू ने एक शब्द भी नहीं कहा। वे दुखी थे। परन्तु उन्हें मौलाना पर गर्व था। उनकी अटल देशभक्ति पर।

समय बीतता गया।

कुछ दिन बाद जुलेखा की मौत की खबर जेल अधिकारियों ने पंडित नेहरू को दी। क्या वे यह खबर मौलाना को बता देंगे? पंडित नेहरू इस दुखद समाचार को मौलाना को बताने के कर्त्तव्य से बच नहीं सके।

यह समाचार मौलाना ने मूर्तिवत होकर सुना। उनके मन में गहरा दुख हो रहा था। वे कमरे में आगे पीछे तेजी से चहलकदमी कर रहे थे। उनका मन बड़ा विकल था। मौलाना को शांत होने में कुछ समय लगा।

पंडित नेहरू ने हल्के से उनकी बांह पकड़ी। उन्होंने मौलाना से फिर कहा कि वे कुछ हफ्तों के लिए पैरोल मांग लें। मौलाना ने नेहरू जी को गले से लगा कर कहा कि "मेरे भाई, उस सरकार से कुछ हफ्तों की रिहाई मांगने से क्या फायदा जो हमारे देश को असल आजादी देने से ही इनकार कर रही है।"

वे 1945 तक जेल में ही रहे।

जेल से छूटने के बाद वे कोलकाता पहुंचे।

उन्हें तीन साल पहले के वे क्षण याद आए जब उन्होंने अपनी पत्नी से विदाई ली थी। विदाई देने वे गेट तक आयी थीं. . .। अब मैं तीन साल बाद वापस आ रहा हूं लेकिन वे कब्र में हैं। मेरा घर खाली पड़ा है. . .मेरी कार पुष्पमालाओं से भरी है। मैंने एक माला ली और जुलेखा की कब्र पर रख दी और मन-ही-मन फातिहा पढ़ा। अभी उनका एक और प्रेम था, उनका पहला प्रेम - उनका देश। इसकी उन्हें सेवा करनी थी।

स्वयं से पहले देश

सुभाष चन्द्र बोस प्रफुल्लित थे। उन्होंने अपनी योग्यता सिद्ध कर दी थी। वे इंडियन सिविल सर्विस (आई.सी.एस.) के लिए चुन लिए गए थे। इसका मतलब था शक्ति, अधिकार, प्रभाव, सामाजिक प्रतिष्ठा, अच्छी आय और सम्पन्न जीवन।

उन्होंने इस प्रतियोगिता में अपनी योग्यता सिद्ध करने के लिए हिस्सा लिया था। यह उन्होंने कर दिखाया था। लेकिन उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वे इस नौकरी को क्यों स्वीकार करें।

इसके विपरीत वह राष्ट्रीय स्वतंत्रता के संघर्ष में हिस्सा लेना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि अपने देशवासियों की सेवा कर, उन्हें शिक्षा दें और उन्हें बताएं कि अंग्रेज भारत का किस तरह शोषण कर रहे हैं जिससे लोगों में स्वतंत्रता के लिए संघर्ष की चेतना जाग्रत हो।

अतएव उन्होंने भारत के अवर सचिव लार्ड लिटन को पत्र लिखकर सूचित किया वे आई.सी.एस. में शामिल नहीं होना चाहते। लार्ड लिटन को यह जानकर आघात लगा। उन्होंने इसकी कभी आशा नहीं की थी। वह तो यह समझते थे कि जो भी इस सर्विस के लिए चुना जाएगा वह इसमें आने के लिए अत्यन्त उत्सुक होगा।

उन्होंने सुभाष चन्द्र बोस को अपने पास बुलवाया। लार्ड लिटन ने सुभाषचन्द्र बोस से पूछा कि वे सरकारी नौकरी क्यों नहीं करना चाहते? बोस ने अपना दृष्टिकोण उनके सामने स्पष्ट किया। बोस ने अपने देशप्रेम की बात बताई। उन्होंने लार्ड लिटन से कहा कि वे भारत के स्वतंत्रता संघर्ष में शामिल होना चाहते हैं।

लार्ड लिटन ने उन्हें समझाया कि वे जल्दबाजी में कोई फैसला नहीं करें। तरुणावस्था में इस प्रकार के सपने युवक देखते हैं। लार्ड लिटन सुभाष

के राष्ट्र प्रेम की गहराई का सही अनुमान नहीं लगा सके। उनका विचार था कि जब सुभाष नौकरी की शक्ति को समझेंगे तो अपने आदर्शवाद को छोड़ देंगे।

लेकिन सुभाष अपने निश्चय पर दृढ़ रहे और कहा, "मैं ब्रिटिश राज के प्रति वफादार रहते हुए मनसा, वाचा, कर्मणा ईमानदारी से भारत की सेवा नहीं कर सकता।"

इन शब्दों में निष्ठा थी। लार्ड लिटन ने सुभाष बोस पर ज्यादा जोर नहीं डाला। वे समझ गए कि सुभाष बाबू अपने निश्चय पर दृढ़ हैं। मन-ही-मन लार्ड लिटन ने सुभाष के साहस की सराहना की।



सुभाष बाबू द्वारा इस उच्च पद और शक्ति वाली नौकरी ठुकरा देने की खबर वज्रपात की तरह लोगों तक पहुंची। उनके पिता अत्यन्त क्रोधित हो गए। वे युवा सुभाष के इस व्यवहार को समझ नहीं सके।

सुभाष चन्द्र बोस को उनके बड़े भाई शरत्चन्द्र बोस ने पत्र लिखा। पत्र में सुभाष को सूचित किया गया था कि उनके पिता सुभाष के इस फैसले से बहुत नाराज हैं। इस तरह आवेश में तुमने कैसे यह फैसला कर डाला। तुमने पिताजी से सलाह क्यों नहीं की? क्या भारत लौटने तक तुम अपने निर्णय को टाल नहीं सकते थे?

सुभाष ने इन बातों का अनुमान कर लिया था। उन्होंने अपने बड़े भाई शरत् बोस को पत्र का उत्तर लिख दिया। उसमें उन्होंने लिखा था कि 'इंगलैंड के राजा के प्रति वफादारी की शपथ लेना उनके लिए असंभव था। वे अपने आपको धोखा नहीं दे सकते थे। वे अपने आपको राष्ट्र की सेवा के प्रति समर्पित करना चाहते थे। वे राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए लड़ने को कृतसंकल्प थे। वे कठिनाइयां झेलने को तैयार थे। अभाव, निर्धनता और माता-पिता की अप्रसन्नता सहने को भी तैयार थे।'

शरत् बाबू ने एक और पत्र सुभाष को लिखा और उसमें उनके कार्य के लिए लिखा था कि 'पिता रात-रात भर सोते नहीं हैं। यह भी कहा गया कि लौटने पर भारत की भूमि पर पैर रखते ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाएगा। वे ब्रिटिश राज के निशाने पर हैं। उनका ब्रिटिश राज के प्रति विरोध साफ जाहिर हो गया है। भारत सरकार उन्हें स्वतंत्र नहीं रहने देगी और वह सुभाष की गतिविधियों को रोकने के लिए कार्रवाई करेगी।'

सुभाष चन्द्र बोस ने यह पत्र अपने मित्र दिलीप कुमार राय को दिखलाया।

काफी देर चुप रहने के बाद दिलीप कुमार राय ने पूछा, "अब तुम क्या करोगे?"

"क्या करूंगा?" सुभाष बाबू ने कहा, "क्या मतलब है तुम्हारा?"

"पता है", राय ने कहा, "सुभाष तुम अपना त्यागपत्र अब भी वापस ले सकते हो?"

"दिलीप ऐसी बात तुम सोच भी कैसे सकते हो?" क्षोभ और क्रोध से प्रतिक्रिया करते हुए सुभाष बाबू का मुंह लाल हो गया था।

"लेकिन तुम्हारे पिता अस्वस्थ हैं. . .लिखा है तुम्हारे. . ." धीरे से किसी तरह राय के मुंह से आवाज निकली।

"मैं जानता हूं", बीच में बात काटते हुए सुभाष चन्द्र बोस ने कहा। उनका चेहरा अब भी लाल था। "अगर हम अपने परिवार की प्रसन्नता के आधार पर अपने आदर्श निर्धारित करते हैं तो क्या ऐसे आदर्श अद्‌भुत होंगे?"

यह प्रतिक्रिया सुनिश्चित और दृढ़ थी।

सुभाष बाबू को खेद था कि वे अपने पिता की इच्छा पूरी नहीं कर पा रहे थे। वे अपने पिता की हार्दिक मानसिक पीड़ा के कारण को समझ रहे थे। फिर भी वे अपने निश्चय पर अड़े थे। देश की स्वतंत्रता उन्हें प्राप्त करनी ही थी। अपनी आखिरी सांस तक वे स्वतंत्रता के लिए लड़ना चाहते थे। क्षीण इच्छाशक्ति वाला व्यक्ति अपने पिता और प्रियजनों के आग्रह के आगे झुक जाता लेकिन सुभाष ऐसे व्यक्तियों में नहीं थे।

जेल से भागने की योजना

गोधूलि का समय था। जेपी (जयप्रकाश नारायण) हजारीबाग जेल की कोठरी में बैठे हुए अपने भाग्य को कोस रहे थे। वे जेल के बाहर होना चाहते थे। लेकिन लाचार थे।

उनकी नजर एक चिड़िया पर पड़ी। वह अपने घोंसले की ओर उड़ी जा रही थी। क्षणभर के लिए अस्तांचलगामी सूर्य की किरणें पड़ने से वह सुनहली हो गयी और उसके बाद लुप्त हो गयी। वे सोचने लगे 'कितना अच्छा हो कि वे भी उड़कर चिड़िया की तरह जेल के बाहर जा सकें।'

जेपी इन व्यर्थ के विचारों से मुक्त होने का प्रयत्न करने लगे। इन ख्यालों की जगह नया विचार उनके मन में आया कि वे जेल से भाग जाने का प्रयास क्यों न करें? जेल से भाग जाने में सफल होने वाले कई लोगों के बारे में उन्होंने पढ़ा था।

जेपी जानते थे कि जेल से भाग जाना कोई बच्चों का खेल नहीं है। हजारीबाग जेल से कैदी भाग न सके, इसका पक्का बन्दोबस्त था। जेल पठारी क्षेत्र में स्थित था और उसके चारों तरफ घना जंगल था। प्रथम महायुद्ध के दौरान यह जेल बनी थी। इस जेल को सुरक्षित समझा जाता था। वहां खतरनाक अपराधी तथा राष्ट्रवादी नेताओं को रखा जाता था क्योंकि वहां से उनका भागना असंभव था।

जेल के चारों ओर ऊंची चारदीवारी थी। जिससे उन्हें फांदना नामुमकिन था। अगर कोई दीवार फांद भी जाए तो वह वन प्रदेश में ही भटक जाता था।

जेपी ये बातें अच्छी तरह जानते थे। फिर भी उन्होंने भागने का प्रयत्न करने का फैसला कर लिया। उन्होंने सोचा केवल अपने भरोसे वे ऊंची दीवार के पार नहीं जा सकते थे क्योंकि यह बड़ा कठिन था। बाहर निकल भी जाएं तो सुरक्षित जगह पहुंचना संभव नहीं था।



अनेक कैदियों के जेल से भागने के बारे में जेपी ने कुछ अन्य साथियों से बातें की। बाद में उन्होंने अन्य कैदियों से पूछा कि क्या वे जेल से भागने में उनके साथ सहयोग करेंगे। वे चौंक गए। उन्होंने ऐसे सुझाव की अपेक्षा नहीं की थी। जेपी के सुझाव की गंभीरता समझने में उन्हें कुछ समय लगा। वे खुशी से उछल पड़े। उन्होंने वचन दिया कि वे जेपी के निदेशानुसार कार्य करेंगे। उन्होंने यह जेपी पर छोड़ दिया कि वे जेल से भागने की विस्तृत योजना बनाएं। वे ही बताएं कि कौन क्या करेगा?

तय हुआ कि वे दीपावली के दिन भागेंगे। दीपावली आठ नवम्बर, 1942 को थी। उन्हें आशा थी कि उन्हें कोई पकड़ नहीं पाएगा क्योंकि उस दिन अमावस्या भी है। इसलिए चारों ओर अंधेरा होगा।

सब भागने वालों ने अपने कपड़े और नकदी आदि बांध ली।

उन्होंने उन दो कैदियों को भी अपने भागने की योजना बता दी जो जेल से भागना तो नहीं चाहते थे लेकिन भागने वालों की मदद करना चाहते थे। एक कैदी कथा-कहानी कहने में माहिर था। उसको भागने वालों ने दीपावली की शाम को कथा-कहानी आदि सुनाकर जेलरक्षकों का मनोरंजन कर लुभाए रखने के. लिए मना लिया।

दीपावली का उत्सव शुरू हुआ। जेलरक्षकों और कैदियों ने एक दूसरे को मिठाइयां दीं। दोनों पक्षों ने खुशियां मनाईं। सब रक्षक उस कैदी के चारों ओर बैठ गए जो कहानियां सुनाकर लोगों को लुभाए रखने में बड़ा कुशल था। उस समय जेलरक्षकों को कोई आशंका नहीं थी।

जेपी और उनके चार साथी इस बीच खिसक लिए। एक कैदी ने खूब लम्बी रस्सी बट ली थी। यह कपड़ों को एक दूसरे से बांधकर बनायी गयी थी। उसने कपड़ों वाली रस्सी को दीवार के ऊपर से नीचे फेंक दिया। दीवार में एक हुक (कांटा) लगा दिया गया था। यह कांटा एक लोहे की छड़ में अटक गया। लोहे की छड़ पहले ही लगा दी गयी थी। रस्सी को उससे बांधा गया और खींचकर देख लिया गया कि वह खुलती तो नहीं। रस्सी के सहारे पांचों ने दीवार पर चढ़कर दूसरी ओर फांदने में सफलता प्राप्त कर ली। इस दल में जेपी के अलावा चार कैदी और थे।

बाहर आ कर चारों ने एक दूसरे को गले लगा लिया। इसके बाद वे जंगल के बीच की एक पगडण्डी से तेजी के साथ आगे बढ़ गए। आगे बढ़ जाने पर उन्हें पता लगा कि कपड़े और नकदी लाना तो वे भूल गए। बड़ा

बुरा लगा। लेकिन वे कुछ कर नहीं सकते थे। अधिक-से-अधिक दूर निकल जाना चाहते थे। वे रातभर घने जंगल तथा गीले और दलदली रास्तों से चलते रहे। वे थक गए थे लेकिन वे रुके नहीं।

दूसरे दिन वे वास्तव में घबड़ा गए। उनके ऊपर एक छोटा हवाई जहाज चक्कर काट रहा था। वे सोचने लगे कि कहीं यह हवाई जहाज उन्हें ढूंढ़ने के लिए तो नहीं भेजा गया।

वे गंदे और धूल-धूसरित लग रहे थे। रात में जब एक गांव के घर में मदद मांगने गए तो पहले तो गांव वालों ने उन्हें डाकू या चोर समझा। भाग्यवश ऐसा आदमी निकल आया जो जेपी को पहचानता था। भगौड़े कैदियों को उनसे कुछ मदद मिली। उन्होंने बैलगाड़ी से कुछ सफर तय किया। बाद में उन्होंने किसानों के कपड़े पहन लिए। ग्रामीण ढंग से साफे बांध लिए। अपने कंधों पर कुल्हाड़ियां रख लीं। बदला हुआ भेष ठीक-ठाक था।

कई पुलिस चौकियों पर पूछताछ में भी उन्हें कोई पकड़ नहीं सका। वे साफ बच गए।

अन्ततः जेपी को अन्य कैदियों का साथ छोड़ना पड़ा। वे गया चले गए। और वहां से बनारस। वहां वे एक मित्र के यहां ठहर गए। मित्र उस समय विश्वविद्यालय में काम करते थे। वहां उन्होंने भूमिगत आन्दोलन संगठित कर कई पर्चे लिखे जिनमें लोगों से कहा गया था कि वे देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ें। उन्होंने अमेरिका के लोगों के नाम कई पत्र लिखे। इनमें कहा गया था कि वे अपने प्रभाव का उपयोग कर ब्रिटेन की दासता से भारत को मुक्ति दिलाएं। वे नेपाल गए। वहां आजाद दस्ता बनाया। इसमें दस व्यक्ति थे। इसका काम तोड़फोड़ करना था।

लगभग एक वर्ष भूमिगत रहकर जेपी ने स्वाधीनता संघर्ष संचालित किया।

हजारीबाग जेल से बच निकलना जेपी के दृढ़ साहस और असीम देशभक्ति का जीवंत उदाहरण है।

ज्ञान ही शक्ति है

श्री एस. सत्यमूर्ति प्रख्यात राष्ट्रवादी थे। वे प्रभावशाली विधायक भी थे। उनमें बड़ी हाजिरजवाबी थी। उनके उत्तर चमत्कृत कर देते थे। सन् 1919 में वे एक बार भारत की स्वतंत्रता के समर्थन के लिए इंगलैंड गए। आयरलैंड में एक सभा में भीड़ में से एक श्रोता ने पूछा कि भारत, जात-पात, समुदायों और धर्मों में बंटा है, ऐसी स्थिति में भारत के लिए स्वतंत्रता मांगना क्या बुद्धिमत्ता है?

सत्यमूर्ति ने बिना विचलित हुए प्रश्न का उत्तर दिया। दृढ़ गूंजती आवाज में प्रतिप्रश्न करके दिया, "ईश्वर ने अंग्रेजों को दुनिया का पुलिसमैन कब से नियुक्त किया?"

सत्यमूर्ति निम्न मध्यवर्ग के परिवार में जन्मे थे। लेकिन बड़े अध्ययनशील थे। पुस्तकों से उन्हें बड़ा प्रेम था। उन्होंने बहुत-सी पुस्तकें पढ़ीं। उनका सिद्धान्त था, "ज्ञान ही शक्ति है।"

उनकी शिक्षा-दीक्षा पुडूकोट्टाई में हुई। उन दिनों यह स्थान देशी रियासत था। पुडूकोट्टाई के राजा बड़े दयालु व्यक्ति थे। उन्होंने अपने यहां कई स्कूल और विद्यालय भी खोले थे।

उच्चतर पढ़ाई-लिखाई के लिए सत्यमूर्ति पुडूकोट्टाई आए।

कालेज की लायब्रेरी बड़ी अच्छी थी। उसमें बहुत पुस्तकें थीं। यह सत्यमूर्ति का प्रिय स्थान था। अपना खाली समय सत्यमूर्ति लायब्रेरी में ही बिताते थे।

मिल्टन, चौसर, गोल्डस्मिथ और शेक्सपीयर या सुकरात, प्लेटो, मिल्स, लाक और रूसो जैसे विचारकों और साहित्यकारों की रचनाएं लायब्रेरी में उपलब्ध थीं।

लायब्रेरियन वृद्ध सज्जन थे और बड़े चौकन्ने रहते थे। उन्होंने सत्यमूर्ति को लायब्रेरी में पढ़ते देखा था। शुरू में उन्होंने सोचा कि सत्यमूर्ति परिश्रमी युवा हैं। इसलिए वे उनकी सहायता करते थे। लेकिन जब सत्यमूर्ति मोटी-मोटी पुस्तकें लेने लगे और उन्हें दो-एक दिनों में ही वापस करने लगे तो लायब्रेरियन को कुछ शंका हुई। उनकी समझ में यह बात नहीं आ रही थी कि कोई लड़का कितना ही प्रतिभाशाली क्यों न हो लेकिन चार, पांच सौ पृष्ठों की पुस्तक एक या दो दिन में पढ़कर वापस नहीं कर सकता। कितना भी बुद्धिमान क्यों न हो इतनी जल्दी पुस्तक कैसे वापस कर सकता है? उन्होंने इसका कारण जानने का प्रयास किया।

फिर उनको एक बात सूझी।

सत्यमूर्ति शायद इन पुस्तकों को तकिए की तरह इस्तेमाल करते हों।

इसलिए जब सत्यमूर्ति अगली बार लायब्रेरी आए तो उन्होंने पूछा, "यह किताब तुमने पढ़ डाली? अभी दो दिन पहले ही तो तुमने ये किताबें ली थी।"

"सर, मैंने इसे पढ़ लिया।" यह कहते हुए उन्होंने पुस्तक को लायब्रेरियन की ओर बढ़ा दिया।

"इतने कम समय में?" लायब्रेरियन चक्कर में पड़ गए थे।

"मुझे केवल इतना डर है कि जब मेरी पढ़ाई खत्म हो जाए तो उस समय तक शायद लायब्रेरी की सारी पुस्तकें मैं न पढ़ पाऊं?" यह कहते हुए सत्यमूर्ति कुछ क्षुब्ध से लगे। उनके चेहरे पर व्यग्रता स्पष्ट नजर आ रही थी।

लायब्रेरियन को यह जवाब गर्वपूर्ण लगा। उन्हें लगा कि इस बात को यहीं छोड़ दें और यह पता लगाएं कि सत्यमूर्ति पुस्तकों का करते क्या हैं?

कुछ दिन बाद प्रिंसिपल लायब्रेरी का निरीक्षण करने आए। उन्होंने कहा, "मैं चाहता हूं कि और ज्यादा विद्यार्थी लायब्रेरी का उपयोग करें।"

लायब्रेरियन ने यह बात सुन ली। 'सर' कहने के बाद वे आगे बोलने की अनुमति का इन्तजार करने लगे।

"यस" कहकर प्रिंसिपल ने लायब्रेरियन की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा।

"सर, मैं चाहता हूं कि कुछ लड़के लायब्रेरी का उपयोग कम करें।" उन्होंने अपनी राय दी।

"क्या वाहियात बात है?" प्रिंसिपल ने अपनी नाराजगी जाहिर की।

"सर, कृपया मुझे स्पष्ट करने दें।" लायब्रेरियन ने विषय को समाप्त नहीं किया।

"भले आदमी। तुम्हें क्या हो गया है? तुम क्या सोच रहे हो। जरा सुनूं तो। संभवत: तुम्हारी चिन्ता कुछ कम कर सकूं मैं।" प्रिंसिपल दयालु पुरुष थे। कुछ क्षण पूर्व वे कठोर दिखलाई पड़ रहे थे लेकिन अब कुछ नरम दिखाई देने लगे।

"सर, आपने सत्यमूर्ति की ओर ध्यान दिया है?"

"बेशक, प्रतिभाशाली छात्र है। वह ऊंचे पदों को सुशोभित करेगा।" प्रिंसिपल ने उत्तर दिया।

"वह प्रतिदिन एक पुस्तक लायब्रेरी से लेता है। अक्सर वह काफी मोटी किताब होती है। दो-एक दिन में ही वह किताब वापस कर देता है। मैं नहीं समझता कि 400-500 पृष्ठों की पुस्तक कोई इतने कम समय में कैसे पढ़ सकता है। हो सकता है, वह पुस्तक को तकिए के रूप में काम में लाता हो।" प्रिंसिपल बीच में कहीं टोक न दे इसलिए लायब्रेरियन ने अपना मत जल्दी-जल्दी कह डाला।

प्रिंसिपल ने एक शब्द भी नहीं कहा।

उन्होंने सत्यमूर्ति को दरवाजे पर खड़ा देख लिया था। प्रिंसिपल ने सत्यमूर्ति से अन्दर आने को कहा।

सत्यमूर्ति कमरे में अन्दर आ गए। उनके हाथ में एक मोटी-सी पुस्तक थी।

पहले विनयपूर्वक उन्होंने प्रिंसिपल को प्रणाम किया और फिर लायब्रेरियन को नमस्कार किया।

प्रिंसिपल ने अपना हाथ बढ़ाया और फिर पूछा कि यहां क्यों आए हो?

"मैं यह पुस्तक वापस करने आया हूं, सर।" सत्यमूर्ति ने प्रिंसिपल को वह पुस्तक दे दी।

"तुमने लायब्रेरी से पुस्तक कब ली थी?" प्रिंसिपल ने पुस्तक को घुमा फिरा कर देखा।

"दो दिन पूर्व, सर!"

"तुमने दो दिन पहले यह पुस्तक ली थी और दो दिनों में पढ़ डाला?"

"जी, सर!"

"तुमने इसके पृष्ठ छोड़े तो नहीं?"

"नहीं, सर।"

पुस्तक से संबंधित कुछ प्रश्न प्रिंसिपल ने पूछे। सत्यमूर्ति ने संक्षेप में सही उत्तर दे दिए।

प्रिंसिपल का मुखमण्डल प्रसन्नता से दमक उठा। उन्होंने लायब्रेरियन की तरफ देखा। "देखिए मित्रवर। सत्यमूर्ति ने पुस्तक को बहुत ध्यान से पढ़ा है, मैं यह कह सकता हूं। मैं चाहता हूं सत्यमूर्ति की तरह ही और छात्र भी पुस्तकें पढ़ें। जो भी पुस्तक सत्यमूर्ति मांगे, वह उसे दी जाए। यह किताबों का सच्चा प्रेमी है। पढ़ने से व्यक्ति ज्ञानवान होता है।"

अब लायब्रेरियन सम्मानपूर्वक सत्यमूर्ति की तरफ देख रहे थे। सत्यमूर्ति के बारे में सोचने में वे कितने गलत थे। सत्यमूर्ति सच्चे पुस्तक प्रेमी थे। उन्हें विश्वास था कि ज्ञान ही शक्ति है।

महिला शान्तिदूत

सन् 1930 में पुरानी दुनिया के सभी आकर्षण इलाहाबाद में थे।

बड़े महल जैसे मकान जहां हरियाली ही हरियाली थी। अबू मोहम्मद रहते थे। वे अमीर विनोदी स्वभाव के और दयालु थे। कला और संस्कृति के संरक्षक होने के कारण वे जनप्रिय भी थे। वे राष्ट्रीय आन्दोलन के समर्थक थे। उनके दोस्तों में राष्ट्रवादी, विख्यात लेखक, सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ और कलाकार थे।

वे बड़े ठाट-बाट से रहते थे। लोगों के स्वागत पर उदारता से खर्च करते थे। भव्य अतिथि सत्कार के लिए उनकी ख्याति थी।

इलाहाबाद में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन हो रहा है। और उसमें कुछ जानी-मानी महिलाएं भी पहुंचेंगी यह खबर अबू मोहम्मद के कानों तक भी पहुंची। यह बहुत बड़ी खबर थी। अबू मोहम्मद ने पता लगाया कि उस सम्मेलन में कौन-कौन आ रहा है। जब पता लगा कि सम्मेलन में श्रीमती सरोजिनी नायडू भी हिस्सा ले रही हैं तो आश्चर्य से उनकी आंखें फटी रह गयीं। श्रीमती नायडू के सम्मान में अबू मोहम्मद ने एक रात्रि भोज देने का निश्चय किया। बाद में उन्होंने विचार-विमर्श किया कि क्यों न इस भोज में सम्मेलन में भाग लेने वाली सभी प्रख्यात महिलाओं को निमंत्रित किया जाए।

उन्होंने सब को भोज में सम्मिलित होने का निमंत्रण भेज दिया। रात्रि भोज की तैयारी में उनके आदमी दिन-रात जुट गए। तैयारी में कोई कसर नहीं छोड़ी गयी। संयोग पर कुछ भी छोड़ा नहीं गया। माली ने उद्यान को साफ-सुथरा कर दिया। मजदूरों ने सारे जाले आदि साफ कर दिए। बंगला स्वच्छ और चमकीला दिखलाने के लिए सफेदी, रंग-रोगन कर दिया गया। मेजबान ने स्वयं व्यंजनों की सूची बनाई। बावर्ची को कहा गया वह स्वादिष्ट खाने की चीजें बनाए।

उनका पौत्र, जो दस साल का था, बड़ा खुश था। कारण ऐसे मौकों

पर वह हमेशा उनके साथ बैठता था। वह सोच रहा था कि उसे अपने दादा के साथ बैठने का एक और अवसर मिलेगा। वह प्रसिद्ध नेताओं को पास से देख सकेगा। वह अभिमान से अपनी आठ साल की बहन के सामने डींग हांक रहा था। बहन ने कहा, "इस बार वह अबू से कहेगी कि वे मुझे अपने पास बैठाएं।"

"और वह तुमसे कह देंगे, बेटी! मैं हमेशा तुम्हारे भाई को अपने साथ ले जाता हूं।" लड़के ने उत्तर दिया।

लड़की तुरंत अपने दादाजी के पास दौड़ गयी। पीछे-पीछे उसका भाई भी गया। लड़की ने अपने अबू की शेरवानी पकड़ ली और कहा, "अब्बू, इस बार आप मुझे अपने साथ ले चलिए, भोज में अपने साथ बैठाइए।"

"अच्छा बेटी!". . .वृद्ध व्यक्ति ने बालिका के बालों पर हाथ फेरते हुए कहा।

"लेकिन अब्बू, आप तो हमेशा मुझे अपने साथ ले जाते हैं और अपने साथ बैठाते हैं।" लड़के ने बीच में बोलते हुए कहा।

"हमेशा. . . लेकिन इस बार बेबी को ले जाऊंगा . . .तुम बरामदे से मेहमानों को देखना। तुम रात्रिभोज में मेरे पास नहीं बैठोगे। इस बार बिटिया का नम्बर है।" वृद्ध ने बिटिया को दुलारते हुए फैसला किया।

लड़का बहन की ओर गुस्से से देख रहा था।

दादाजी ने बालक को गले लगाते हुए कहा, "आपस में बांटने से खुशी मिलती है।"

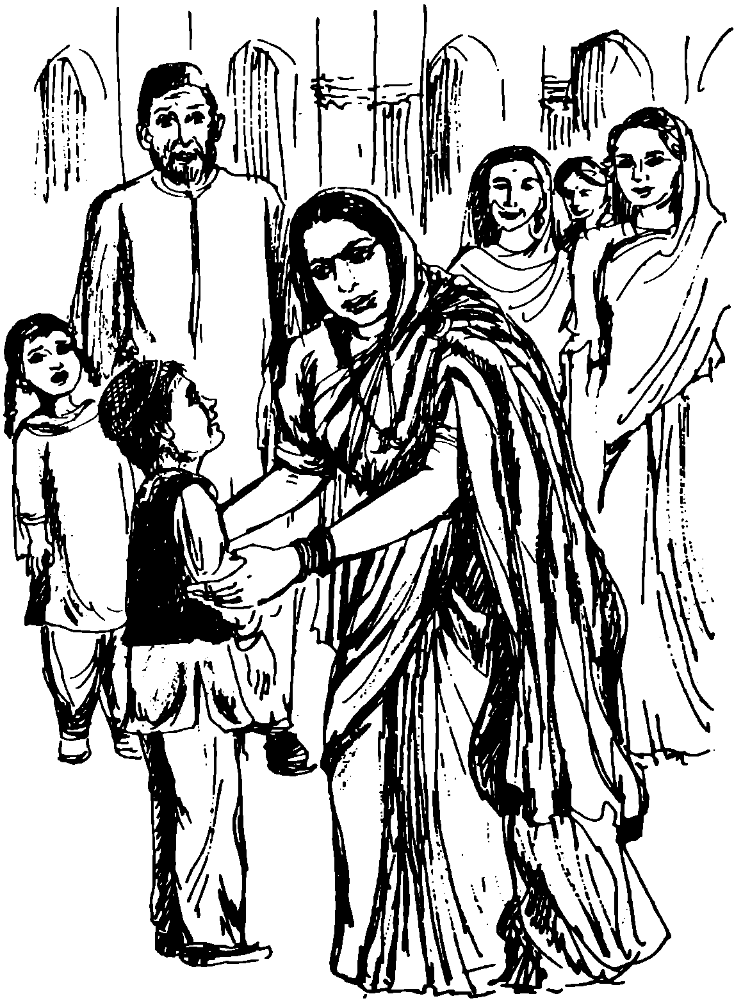
बालक खुश नहीं दिखाई दिया।

लेकिन वह कुछ कर नहीं सकता था।

"क्या सरोजिनी नायडू जी आ रही हैं?" बालिका ने पूछा।

"हां वे बहुत प्रसिद्ध कवियित्री हैं। हम लोग उन्हें भारत कोकिला कहते हैं। वह बड़ी हास-परिहास करने वाली महिला हैं। बचपन में वह बड़ी चुलबुली थीं, वह लोगों का मजाक बनाती हैं। वे किसी को नहीं बख्शती। एक बार उन्होंने गांधीजी को 'मिकी माउस' कह दिया था।" वृद्ध अब्बू ने बच्चों को बतलाया।

"महात्मा जी उन पर चिल्लाए और नाराज नहीं हुए?" लड़के ने जिज्ञासा की?



"नहीं बेटा, वे प्रसन्नता से हंसे। उन्हें यह विशेषण अच्छा लगा," वृद्ध दादा ने स्पष्ट किया। लड़का मन-ही-मन कुढ़ता रहा। लेकिन किसी ने लड़के की ओर ध्यान नहीं दिया। उसके मूड की ओर भी कोई आकृष्ट नहीं हुआ। सब लोग व्यस्त थे।

लड़के ने स्थिति को परखा। वह सरोजिनी नायडू के निकट पहुंचना चाहता था। उसने एक योजना बनायी। पर उसे छिपाए रखा किसी को बताया नहीं।

शाम हो गयी।

धीरे-धीरे, एक-एक करके मेहमानों का आना शुरू हो गया लड़का एक तरफ जरा दूर खड़ा हो गया। वृद्ध पुरुष दरवाजे पर मेहमानों का स्वागत करने को खड़े गए।

अन्तत: श्रीमती सरोजिनी नायडू पधारीं। बच्चे ने देखा कि अब्बू ने मुस्कुराहट के साथ उनका स्वागत किया। बच्चा चुपचाप वहां से खिसक लिया। वह सीधा भोजन कक्ष के दरवाजे पर पहुंचा। वह बराबर किसी-न-किसी की छाया में रहा। इससे कोई उसे देख नहीं पाया।

अब वह अपनी योजना पर कैसे अमल करेगा। वह यह समझ नहीं पा रहा था। अगर वह योजना में सफल नहीं हो पाया तो न केवल भोज में शामिल नहीं हो पाएगा बल्कि उसे अब्बू के गुस्से का भी सामना करना पड़ेगा।

थोड़ी देर में उसने ये सारे विचार एक तरफ कर दिए। उसके दिल की धड़कन बढ़ गयी थी। उसने अपने मुंह ही में गीत गुनगुनाया। उसे वह अच्छा लगा।

क्या श्रीमती सरोजिनी नायडू को वह गीत पसन्द आयेगा। क्या वह उसे हल्के-फुल्के मूड में ही लेंगी। उसने सोचा ऐसा ही होगा। एक महिला जो गांधीजी को एक विशेषण से संबोधित कर सकती है वह अपने लिए प्रयुक्त विशेषण का भी स्वागत ही करेगी।

जब श्रीमती नायडू उसके अब्बू और बहन के साथ भोजन कक्ष के द्वार पर पहुंची तो लड़के ने अपना गला थोड़ा-सा साफ किया, खखारा और जोर से गीत गाया। उसका अर्थ था 'यह देखो, आती है महिला शान्ति दूत (लेडी डव)! उनके गालों पर है लाली। उनके हृदय में है धड़कन।'

अबू मुहम्मद इस घटना से सिटपिटा गए। गुस्से से उनकी मूंछे कांपने

लगीं। उनके पोते ने लेडी डव कैसे कह दिया। बच्चे को बाद में देखा जाएगा। उसे दंड दिया जाएगा।

सरोजिनी नायडू जोर से हंस पड़ीं। वे अपने मेजबान की ओर मुड़ीं और पूछा। 'बड़ी मीठी धुन है। गीत में मुझे लेडी डव कहा गया। कितना बढ़िया विशेषण है? किसने लिखा है यह शेर? प्यारे दोस्त कितना अच्छा स्वागत है? शुक्रिया। क्या मैं उससे मिल सकती हूं जिसने यह शेर रचा है?'

अबू मुहम्मद को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। मेजबान ने सोचा कि 'लेडी डव' की उपमा कहने से मेहमान रुष्ट हो जाएंगी। उसके बदले श्रीमती नायडू खुश हो रही थीं। उनकी आंखों ने भीड़ में लड़के को खोज लिया। वे हाथ पकड़कर उसे महिला मेहमान के सामने ले आए। बच्चा भय से कांप रहा था। उसने डरते-डरते श्रीमती नायडू को सलाम किया।

सरोजिनी नायडू ने उसे शाबाशी दी। और कहा, "तुमने क्या कहा? मैं 'कबूतरी' हूं। मैं 'मादा कबूतर' हूं? जानते हो कबूतरी शान्ति का प्रतीक मानी जाती है। हमारे नेता गांधीजी भी शांति के प्रतीक हैं। तुमने उन्हें कभी देखा है। उनके चेहरे में मुझे प्रेम और शरारत की झलक लगती थी। वे अक्सर मुझे 'मिकी माउस' जैसे लगते हैं। मैं जब भी उन्हें मिकी माउस के नाम से पुकारती हूं तो वे इसका बड़ा आनन्द लेते हैं। मैं मादा कबूतर के उपनाम से बुलाए जाने पर बड़ा लुफ्त महसूस करूंगी। शुक्रिया मेरे बच्चे। आओ मेरे साथ आओ। खाने पर मेरे साथ बैठो।" वे रुक गयीं उन्होंने रुककर लड़के को अपने साथ बैठाने की अनुमति मेजबान से मांगी। वृद्ध ने सिर हिलाकर 'हां' कह दिया।

सरोजिनी नायडू ने बच्चे का हाथ पकड़ लिया और अपने साथ ले गयीं। बच्चे ने धीमी आवाज में कहा, "महान महिला है। महात्मा गांधी जितनी ही। गांधीजी को 'मिकी माउस' कहलाना पसन्द आया। सरोजिनी नायडू को 'लेडी डव' नाम अच्छा लगा। वे सचमुच लेडी डव हैं।"

झंडा अवश्य फहराएगा

सन् 1942, संसार द्वितीय महायुद्ध के चक्रव्यूह में फंसा था। बहुत से भारतीय समझते थे कि वह महायुद्ध तानाशाही और लोकतंत्र के बीच संघर्ष था। उनकी सहानुभूति ब्रिटेन, अमेरिका और उन देशों के साथ थी जो लोकतंत्र समर्थक थे। हिटलर की ओर से जो खतरा था उसे रोकने के लिए उनसे जो कुछ हो सकता था वह करना चाहते थे।

लेकिन वे उस समय तक कुछ नहीं कर सकते थे जब तक ब्रिटेन भारत को स्वतंत्र नहीं कर देता। राष्ट्रवादी चाहते थे ब्रिटेन भारत को स्वशासन का अधिकार दे दे। वे यह अधिकार तत्काल नहीं चाहते थे। वे अपनी प्राथमिकताएं जानते थे। वे इस बात पर सहमत थे कि उनका पहला लक्ष्य जातीयता और तानाशाही तत्वों को परास्त करना था। लेकिन एक बार इन तत्वों को धूल चटाने के बाद, वे भारत को स्वतंत्र देखना चाहते थे। वे इस बात का आश्वासन ब्रिटेन से चाहते थे।

ब्रिटेन की प्रतिक्रिया अनमनी थी।

चर्चिल ने सर स्टैफर्ड क्रिप्स को समस्या का हल निकालने के लिए भारत भेजा। राष्ट्रवादी इस पर प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा कि युद्ध में सहयोग के लिए जो शर्त भारत ने लगायी है, वह मान ली जाएगी लेकिन जब वह शर्त मानी नहीं गयी तो वे निराश हो गए। जिस उद्देश्य से सर स्टैफर्ड क्रिप्स भारत आए थे वह 'टांय-टांय फिस्स' हो गया। लड़ाई की समाप्ति के बाद भारत को स्वतंत्रता मिलने का आश्वासन नहीं मिला। भारत का एक प्रतिनिधि वायसराय की कार्यपालिका में रक्षा का प्रभारी बनाया जाए, यह मांग भी नहीं मानी गई।

'क्रिप्स मिशन' की विफलता से भारतीय आंकाक्षाओं को जबर्दस्त झटका लगा।

गांधीजी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन अगस्त 1942, के

प्रथम सप्ताह में बुलाया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के 45वें अधिवेशन में हिस्सा लेने सभी शीर्ष नेता मुंबई पहुंच गए।

तब अरुणा आसफ अली युवती थीं। वे सुन्दर और आकर्षक थीं। उनके साथ उनके पति भी थे। दोनों ही कांग्रेस के आदर्शों को मानते थे। अरुणा के लिए यह दुर्लभ अवसर था। वे सांस रोके आगे होने वाली घटनाओं का इंतजार कर रही थीं। वे महसूस कर रही थीं कि 'क्रिप्स मिशन' की विफलता के कारण कांग्रेस नेताओं को लाचार होकर भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए कोई रणनीति तय करनी होगी।

उन्हें निराश नहीं होना पड़ा।

गांधीजी ने देश को नया मंत्र दिया। उन्होंने अंग्रेजों से भारत छोड़कर चले जाने को कहा। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन शुरू करने के लिए नौ अगस्त का दिन तय किया गया। अंग्रेज सरकार को इसकी सूचना मिल गयी। सरकार ने आन्दोलन के दमन की योजना बना ली।

नौ अगस्त को प्रातःकाल सभी बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया।

अरुणा आसफ अली को नेताओं की गिरफ्तारी का समाचार मिला।

उनको यह भी पता लगा कि विशेष गाड़ी से नेताओं को विभिन्न स्थानों पर ले जाया जा रहा है। वे फौरन स्टेशन चल दीं। वहां एक पुलिस अधिकारी ने उनको रोका। अरुणा जी से कहा गया कि स्टेशन पर किसी को ज़ाने नहीं दिया जाएगा। उन्होंने देखा पुलिस ने चारों ओर से स्टेशन को घेर लिया है। उन्होंने पहले पुलिस कर्मचारियों से प्रार्थना की। उन्हें मनाया। अन्त में पुलिस मान गयी। उसने अरुणा को स्टेशन के भीतर चले जाने दिया। पर शर्त यह रखी कि वे ट्रेन से दूर खड़ी रहेंगी और नेताओं की एक झलक ही पा सकेंगी।

वे बताई गयी जगह खड़ी हो गयीं। उन्होंने सब नेताओं के चेहरों पर नजर डाली। गांधीजी बहुत चिंचित दिखलाई पड़ रहे थे। उनके चेहरे पर कठोरता थी। पंडित जवाहर लाल नेहरू क्रोध से आगबबूला थे।

अरुणा जी क्या कर सकती थीं? उन्होंने प्रश्न का उत्तर चाहा।

उन्होंने गवालिया टैंक मैदान में नेतृत्व की ठानी। वहां सभा में मौलाना आजाद कांग्रेस का झंडा फहराने के बाद लोगों को संबोधित करने वाले थे। लेकिन मौलाना आजाद के इस कार्यक्रम के कार्यान्वित होने से पहले ही उन्हें

गिरफ्तार कर लिया गया था। अब उनकी जगह यह काम कौन करेगा? अरुणा जी को यह पता नहीं था। लेकिन उनको एक बात मालूम थी। निश्चित कार्यक्रम अवश्य कार्यान्वित होना है। जब वे मैदान पर पहुंची तो यही चिन्ता सबसे अधिक उन्हें सता रही थी। मैदान में भी पुलिस बड़ी संख्या में तैनात थी। लेकिन कांग्रेस समर्थकों की संख्या पुलिस से अधिक थी। जो मंच बनाया गया था कांग्रेस कार्यकर्ता दल उसे चारों ओर से घेरे था। अरुणा जी ने वह स्थान देखा जिस पर झंडा फहराया जाना था। उन्होंने झंडा देखा। वह फहराए जाने की जगह पर था।



अरुणा जी धीरे-धीरे खिसककर मंच के पास पहुंच गयीं। एक सार्जेण्ट अपने मातहत दो पुलिस कर्मचारियों को हिदायत दे रहा था, 'वह ध्वज जहां है वहां से हटा दो।' यह हिदायत जोर-जोर से दे रहा था।

अरुणा जी ने सोचा कि अब जरा भी समय नहीं गंवाना चाहिए।

जो लोग अरुणा जी के सामने खड़े थे। स्त्री और पुरुष उनको ठेल कर वे आगे बढ़ गयीं। कुछ लोगों ने उनकी तरफ गुस्से से देखा। जब अरुणा जी की आंखों में देखा तो उनकी दृढ़ता देखकर वे हटकर किनारे हो गए। वह आवेश में थीं। उनकी आंखों से ज्वाला भड़क रही थी। वह ज्वाला जो उस देशभक्त की आंखों में होती है जो राष्ट्र के लिए कुछ भी कर गुजरने को तैयार होता है।

वे कूदीं और क्षणभर में मंच पर पहुंच गयीं।

इसके पहले कि सार्जेण्ट समझ पाता कि वे क्या करने पर आमादा हैं उन्होंने वह रस्सी पकड़कर खींच ली और तिरंगा झंडा फहरा दिया। ध्वज हवा में खुलकर लहराने लगा। भीड़ खुशी से चिल्ला उठी। 'वंदेमातरम्', 'महात्मा गांधी की जय', 'भारत छोड़ो' के नारों से मैदान गूंजने लगा।

पुलिस ने भीड़ को तितर-बितर करने की कोशिश की। लोगों ने पुलिस की एक नहीं चलने दी। वह बड़ी भीड़ जुलूस की शक्ल में बदल गयी और जुलूस कांग्रेस भवन की ओर बढ़ गया।

अरुणा आसफ अली हर्षित थीं।

उन्होंने समय पर पहल करके योजनानुसार झंडा फहरा दिया था।

उन्होंने पीछे मुड़कर देखा। ध्वज हवा में फहरा रहा था। अगले ही मिनट झंडा नीचे आ गया क्योंकि सार्जेंट ने झंडे की वह डोर काट दी थी जिस पर झंडा बंधा था। अरुणा जी क्रोध से भर उठीं। सार्जेंट झंडे को पैरों से कुचल रहा था। उन्हें ऐसा लग रहा था कि वे उस पर दौड़ पड़े और उसका पेट फाड़ डालें। लेकिन उन्होंने अपने आप को रोका। वे जान गयी थीं इस समय रोष दिखलाने से कोई लाभ नहीं होगा। जब तक भारत में ब्रिटिश शासन समाप्त नहीं होता वे उसके विरुद्ध लड़ने के लिए कृतसंकल्प हैं। उन्होंने बड़बड़ाते हुए कहा, "मैं ब्रिटिश राज के टुकड़े-टुकड़े होने तक लड़ूंगी।"

उन्होंने अपना संकल्प पूरा किया। वह अज्ञात स्थान पर छिप गयीं। ब्रिटिश राज के विरुद्ध प्रतिरोध संगठित किया। सरकार पर बराबर दवाब डालती रहीं। भारत के स्वतंत्र होने में उनका बड़ा योगदान था।

जीते-जागते ध्वज

सन् 1928 में ब्रिटिश सरकार ने एक आयोग की नियुक्ति की थी। इसका काम भारत के संवैधानिक सुधारों के लिए सुझाव देना था। कमीशन नियुक्ति की मांग राष्ट्रवादियों ने रखी थी।

राष्ट्रवादियों को आयोग का गठन पसन्द नहीं आया। लार्ड साइमन को आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। आयोग में कोई भारतीय सदस्य नहीं रखा गया था। सभी सदस्य अंग्रेज थे।

यह आयोग निष्पक्षतापूर्वक अपना कार्य कैसे कर सकता था जब आयोग से भारतीय ही बाहर हों।

राष्ट्रवादियों ने इस प्रकार के प्रश्न उठाए। शासन ने इन सबकी उपेक्षा की।

इस अन्याय के विरुद्ध लोग क्या कर सकते थे? राष्ट्रवादियों ने तय किया कि वे आयोग का विरोध करेंगे। तय हुआ कि कोई भारतीय आयोग के सामने अपना मत प्रकट करने के लिए उपस्थित नहीं होगा। कोई भी भारतीय आयोग से विचारों का आदान-प्रदान नहीं करेगा। जनता आयोग का विरोध करेगी।

गांधीजी ने आयोग के विरोध का ऐलान कर दिया। विरोध में बहुत से छात्रों ने भी हिस्सा लेने का फैसला किया।

भड़ोच में उषा मेहता नाम की दस बरस की लड़की एक स्कूल में पढ़ती थी। उसके पिता जज थे। पूरा परिवार सुख-सुविधाओं से रहता था।

लड़की ने दक्षिण अफ्रीका की महात्मा गांधी की कथाएं सुन रखी थीं। वह उनकी मानसिक और आन्तरिक शक्तियों से बड़ी प्रभावित थी। गांधीजी अहिंसा के सिद्धान्त को मानते थे। जो बोलते थे उस पर अमल करते थे। गांधीजी किसी के प्रति द्वेष नहीं रखते थे। सबके प्रति दयाभाव रखते थे।

उषा भी आन्दोलन में शामिल होना चाहती थी। निस्संदेह, उसे यह पता नहीं था कि गांधीजी ने साइमन आयोग का बहिष्कार करने के लिए क्यों कहा था। गांधीजी ने देशवासियों से जो कुछ करने के लिए कहा था। वही वह भी करना चाहती थी। गांधीजी के शब्द ही कानून थे। गांधीजी उसके आदर्श थे।

वह क्या कर सकती थी?

उसने कुछ लड़कियों को एकत्रित किया। वे लड़कियां उसकी सहपाठिन थीं। लड़कियों ने जुलूस निकाला। उन लड़कियों ने जल्दी-जल्दी तिरंगा ध्वज तैयार किया। फिर उसे अच्छी तरह एक बांस पर बांधा।

वे उस ध्वज के साथ शहर की मुख्य सड़क पर आयीं। वहां उन्होंने 'महात्मा गांधी की जय' और 'सायमन वापस जाओ' के नारे लगाने शुरू कर दिए।

इस बीच पुलिस आ गयी। जो लड़की आगे झंडा लिए थी उससे पुलिस ने जबरदस्ती वह तिरंगा छीन लिया। अन्य पुलिस कर्मचारी हाथ में बेंत हिलाते हुए आ गए। उन्होंने जुलूस को तितर-बितर कर दिया।

विरोध प्रदर्शन जल्दी समाप्त हो गया।

उषा और उनकी सहेलियां शाम को इकट्ठी हुईं। उनका उद्देश्य था कि आगे की रणनीति तैयार की जाए।

उनका संकल्प था कि वे आगे भी विरोध जारी रखेंगी।

उषा ने कहा कि इस बार पुलिस इतनी सरलता से झंडा नहीं ले जा पाएगी।

लड़कियां उषा के मुंह की ओर देखने लगीं। इसका क्या अर्थ था? अगर पुलिस जबर्दस्ती झंडा छीन लेगी तो वे क्या करेंगी?

"मैंने एक योजना बनायी है। हम सब जीवित ध्वज बन जाएंगे।" उषा ने उत्तर दिया।

"जीवित ध्वज?" सभी लड़कियां उलझन में पड़ गयी थीं।

तब उषा ने बतलाया कि उसकी क्या योजना है?

लड़कियों ने अनुभव किया कि उषा की योजना वास्तव में अलौकिक है। सभी ने उसके अनोखे सुझाव का स्वागत किया। वह मुस्कुराई।

उसने कहा कि सुझाव को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक प्रबंध किया जाए।

वे लड़कियां उन सभी दुकानदारों से मिलीं जो खादी बेचते थे। उन्होंने अपने मन की बात उनसे कही। विचार-विमर्श किया। लोगों की प्रतिक्रिया अनुकूल थी।

"हम चाहते हैं कि सबेरे तक सब काम हो जाए। किसी को कुछ पता भी न चले।" लड़कियों ने दुकानदारों से कहा।

इसके बाद वे घर लौट आयीं।

उषा बड़ी उत्साहित थी।

फिर भी उसके मन में एक चिन्ता थी। उसके पिता जज थे। क्या उसके इस कार्य की वजह से उसके पिता के विरुद्ध सरकार कार्रवाई नहीं करेगी। वह अपने पिता को इस मुसीबत से कैसे बचाए? शीघ्र ही एक विचार उसके मन में कौंधा। उसने एक पुर्जा लिखा। उसमें लिखा था कि यह कार्य वह स्वयं अपनी मर्जी से कर रही है। उसके पिता को इस काम के बारे में तनिक भी पता नहीं है।

वह बिस्तर में करवटें बदलती रही। उसे बहुत देर तक नींद नहीं आई। दूसरे दिन जो कुछ होने का उसका अनुमान था, वही उसके दिमाग में घूमता रहा। और तब वह गहरी नींद में सो गयी।

वह सूर्योदय के पहले उठ गयी। उसने अपनी मां से कहा कि उसे स्कूल जल्दी पहुंचना है।

जब वह स्कूल पहुंची तब बहुत सी लड़कियां आ गयी थीं। थोड़ी देर बाद एक आदमी कपड़ों का बंडल लेकर आया। लड़कियों ने उससे वह बंडल ले लिया। एक-एक करके लड़कियां क्लास रूम में गयीं और उन्होंने अपने कपड़े बदल लिए।

नयी वर्दी पहनने के बाद सभी लड़कियां स्कूल के हाते के बाहर निकल गयीं। अब वे मुख्य सड़क पर आ गयी थीं। व्यवस्थित जुलूस के रूप में सड़क पर मार्च कर रही थीं। वे 'वंदे मातरम्', 'महात्मा गांधी की जय' के नारे लगा रही थीं। वे जोर-जोर से नारा लगा रही थीं, 'साइमन वापस जाओ'।

पुलिस शीघ्र ही लड़कियों को रोकने के लिए आ गयी।

वह यह सोचकर आयी थी कि लड़कियों को डरा-धमकाकर आगे प्रदर्शन करने से रोक देगी।

लेकिन यहां कोई झंडा हवा में नहीं लहरा रहा था।

यह देखकर पुलिस को आघात लगा।

इसके बजाय वे हाथ में झंडा फहरा रही थीं। लड़कियां तिरंगे कपड़े पहने थीं। सफेद सलवार, भगवा रंग की कमीज और हरे दुपट्टे ओढ़े थीं। इस तरह हर एक लड़की तिरंगा झंडा बनी थी।

पुलिस के पास अब एक ही विकल्प था। वे सब बच्चियों को पकड़कर थाने ले गए। और हवालात में बंद कर दिया।

यह खबर उषा के पिता के पास पहुंची।वे मजिस्ट्रेट के पास पहुंचे। मजिस्ट्रेट ने उनसे कहा, "मेरा पुत्र अरुण खुद हवालात में है। उसने तब तक हवालात के बाहर आने से इन्कार कर दिया है जब तक उसके और सब साथी रिहा नहीं किए जाते। उषा ने भी कह दिया कि जब तब अन्य लड़कियां रिहा नहीं होती वह भी नहीं जाएगी। प्रतीक्षा कीजिये। कुछ घंटों में सारे बच्चे वापस आ जाएंगे। उन्हें कोई नुकसान नहीं होगा। वास्तव में पुलिस ने बच्चों को चने बांट दिए थे। क्या बढ़िया दृश्य था। लड़कियां खुद राष्ट्रीय ध्वज बन गयीं थीं।"

"जीते-जागते ध्वज", बरसों बाद उषा मेहता ने कहा।

कमाल का कारनामा

सन् 1932, में महात्मा गांधी ने देशवासियों से अपील की कि सब लोग 26 जनवरी को स्वतंत्रता दिवस मनाएं। उनका आह्वान देश के कोने-कोने में पहुंच गया। यह आग्रह बड़ा प्रेरणास्पद था। यह विदेशी शासकों के लिए चुनौती थी। शासकों ने इसके जवाब में गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया। कांग्रेस पर प्रतिबंध लगा दिया। अंग्रेजों का अनुमान था कि इस तरह बल प्रयोग करने से गांधीजी की अपील निरर्थक हो जाएगी।

लेकिन अंग्रेजों का अनुमान गलत साबित हुआ।

गांधीजी की अपील ने देश भर के हजारों युवाओं को प्रेरणा दी। उन्होंने साहस भरे काम किए। चेन्नई में पच्चीस वर्ष का एक राष्ट्रवादी युवक था। जिसका नाम था - भाष्यम।

भारत के स्वतंत्र होने के संकल्प को सिद्ध करने के लिए उसने कुछ सनसनीखेज काम करने की ठानी। जाने-माने राष्ट्रवादी कवि सुब्रह्मण्य भारती के ये शब्द उसके कानों में गूंज रहे थे - "स्वतंत्रता की हमारी प्यास कब बुझेगी!" इन शब्दों ने भाष्यम को साहसिक कार्य करने के लिए प्रेरित किया।

भाष्यम ने तय किया कि वह चेन्नई में फोर्ट सेण्ट जार्ज के ऊपर राष्ट्रीय तिरंगा फहराएगा।

यह अत्यन्त साहसिक निर्णय था। सेण्ट जार्ज फोर्ट में गोरों की फौज रहती थी। भाष्यम वहां कैसे पहुंचेगा? उसने अपनी एक योजना बनायी। बड़ी सावधानी से उसने हर कदम के बारे में सोच-समझकर कार्यक्रम बनाया। उसके किसी कदम के बारे में कहीं कोई लापरवाही नहीं थी।

पच्चीस जनवरी 1932, को आधी रात होने वाली थी। ठीक उसी समय भाष्यम सेण्ट जार्ज फोर्ट के प्रवेश द्वार पर पहुंचा। वह खाकी वर्दी पहने था। आम तौर पर सेवा दल के सदस्य इस कपड़े की वर्दी पहनते थे। वह



आस-पास इस तरह घूमता रहा जिससे उसे कोई देखने न पाए। आखिरकार उसने देखा कि फिल्म देखकर कुछ गोरों का एक दल अपने क्वार्टरों को लौट रहा है। वह भी उस ग्रुप में शामिल हो गया। गोरे सैनिकों ने उसे नहीं देखा। वह उनके साथ फोर्ट में दाखिल हो गया।

फोर्ट में दाखिल होते ही भाष्यम उन गोरों के दल से अलग हो गया।

वह बराबर अंधेरे में ही रहा। वह उस समय तक चलता ही रहा जब तक वह बेतार के तार भेजने वाले खंभे तक नहीं पहुंचा। यह खंभा फोर्ट के उत्तर-पश्चिम के कोने में था। उसने ऊपर देखा। ऐसा लगता था कि खंभा तारों भरे आसमान तक चला गया है। वह बड़ा ऊंचा लग रहा था। भाष्यम को खंभे के सबसे ऊंचे स्थान तक पहुंचना था। उसकी वर्दी में जो झण्डा टंका हुआ था उसे वह वहां फहराना चाहता था।

उसने सीढ़ियों से ऊपर चढ़ना शुरू किया। ये सीढ़ियां खंभे के साथ लगी थीं। उसने जरा-सी भी आहट नहीं होने दी। वह हर सीढ़ी पर मजबूती से पैर रखता था। वह गोल-गोल खंभे की सीढ़ियों पर चढ़ता गया और चालीस फीट की ऊंचाई तक चढ़ गया।

अकस्मात तेज प्रकाश की एक झलक उस पर पड़ी। भाष्यम को पता नहीं चला कि वह प्रकाश कहां से आया। वह भय से बर्फ की तरह जम गया। और झुक गया।

भाग्यवश किसी भी सन्तरी ने उसे नहीं देखा।

भाष्यम ने तब तक प्रतीक्षा की जब तक प्रकाश हट नहीं गया। वह एक बार फिर सुरक्षित हो गया था। अंधेरे ने उसे फिर लपेट लिया था। बाद में उसे पता लगा कि प्रकाश कहां से आया था। वह प्रकाश स्तंभ (लाइट हाउस) से आया था। वह सीढ़ियों से चिपककर खड़ा हो गया और अपने आपको लोगों के लिए अदृश्य बना दिया।

अन्तत: वह 160 फीट की ऊंचाई तक पहुंच गया। वह सबसे ऊंचा बिंदु था जहां तक भाष्यम पहुंच सकता था। अब उसे खंभे के सहारे ही ऊपर चढ़ना था। यह उसके मिशन का सबसे खतरनाक हिस्सा था। लेकिन उसके निश्चय में इससे जरा भी अन्तर नहीं पड़ा। उसने आखिरी चालीस फीट की ऊंचाई भी पूरी की। नारियल के पेड़ों पर चढ़ने का अभ्यास कर उसने यह सीखा था। भाष्यम शीघ्र ही ऊपर पहुंच गया। वजन की वजह से खंभा थोड़ा हिला। लेकिन मजबूत होने के कारण खंभा भाष्यम का बोझा संभाल सकता था।

उसने सात फीट लम्बा और साढ़े चार फीट चौड़ा तिरंगा अपनी कमर से लपेट रखा था। झंडे पर चर्खे के नीचे लिखा था, "आज ही भारत स्वतंत्र हवा में सांस ले रहा है।" भाष्यम ने कमर में बंधा झंडा खोल लिया और उसे मजबूती से खंभे से बांध दिया। अब झंडा खुलकर हवा में फहरा रहा था। भाष्यम खुशी से फूला नहीं समा रहा था। उसने लक्ष्य प्राप्त कर लिया था।

थोड़ी ही देर में वह नीचे जमीन पर उतर आया था। भोर हो चुकी थी। भोर से पहले ही वह सैनिकों की एक टुकड़ी के साथ मिलकर किले के बाहर आ गया।

सुबह होने पर सैर के लिए समुद्र किनारे आने वाले लोगों को यह देखकर बड़ा अचरज हुआ कि ऊंचे स्तम्भ पर तिरंगा फहरा रहा था। तिरंगा यूनियन जैक से भी ऊपर लहरा रहा था।

फोर्ट पर तिरंगा ध्वज फहराने की खबर जब अधिकारियों को लगी तो चारों तरफ कोहराम मच गया। सबको बड़ा आघात लगा। उन्हें पता नहीं था कि यह काम किसने किया। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि कोई अत्यंत सुरक्षित क्षेत्र में कैसे घुस आया और तिरंगा झंडा फहरा गया।

भाष्यम ने शेर की मांद में ही घुसकर उसे चुनौती दी थी।

अनोखा साहस

इंदिरा प्रियदर्शिनी को दूर पास के सब लोग 'इंदू' के नाम से पुकारते थे। चारों ओर गहमागहमी का वातावरण था। पंडित जवाहरलाल समेत सभी लोग व्यस्त थे। पंडित नेहरू प्राय: इंदू के साथ बिताने के लिए कुछ समय निकाल लेते थे।

इंदू को पता लग गया था कि आनंद भवन में इतनी हलचल क्यों थी? राष्ट्रीय स्तर के अनेक बड़े नेता आ रहे थे. . .गांधीजी, सरदार पटेल, मौलाना आजाद आदि अन्य कई नेता आने वाले थे। वे आपस में भारत के स्वतंत्रता संघर्ष को कैसे आगे चलाया जाए इस पर विचार-विमर्श करने वाले थे।

इंदू की इच्छा थी कि वह भी उन लोगों के साथ बैठे। उनकी बातें सुने। लेकिन इंदू तो अभी बारह वर्ष की ही थी। इंदू वानर सेना की नेता थी। लेकिन सभी बड़े उसे बच्चा समझते थे। इंदू ने अपने पिता से पूछा कि क्या वह बैठक में आ सकती है। उन्होंने उसे प्यार से समझाया और मजाक में कहा, "नहीं इंदू। हमारे साथ बैठने के लिए तुम बहुत छोटी हो। हम लोग उम्र में तुमसे बड़े हैं। हम जोर-जोर से बात करते हैं। एक-दूसरे पर चीखते चिल्लाते हैं। एक-दूसरे पर ताने कसते हैं। अगर हमें लड़ते देखोगी तो हमारे लिए जो सम्मान तुम्हारे मन में है, वह सब नौ दो ग्यारह हो जायेगा।"

सारे नेता भावी कार्यक्रम लेकर आपस में बहस में लग गए। इंदू अकेली रह गयी। इंदू ने सोचा कि मैं झूला झूलती हूं। वह झूले पर बैठ गयी। उसे झूला झूलने में आनन्द आ रहा था।

वह झूले पर बैठी थी लेकिन उसकी आंखें आसपास के रंग-बिरंगे फूलों, तितलियों, हरी घास को देख रही थीं।

"इंदू. . ." उसके कानों में आवाज पड़ी। कोई उसे बुला रहा था।

"हां।" उसनें उत्तर दिया। झूले पर बैठे-बैठे ।

"आओ,! तुम्हारे स्कूल जाने का समय हो गया।" और आया इंदू को स्कूल वास्ते तैयार करने के लिए आ गयी।

"स्कूल? आज मैं स्कूल नहीं जाऊंगी। यहीं आसपास रहूंगी। मैं गांधीजी को देखूंगी। मैं सरदार साहब से मिलूंगी। मैं उनसे बातें करूंगी। कम-से-कम जब वे आराम करेंगे तब मुझे उनसे बात करने का मौका मिलेगा।" इंदू झूले पर बैठी रही।

"आओ इंदू! अगर तुम क्लास में नहीं गयीं तो पता लगने पर तुम्हारे पिताजी नाराज होंगे. . ." आया ने कहा।

"हे तुमने ये आवाजें सुनीं? कम्पाउण्ड के बाहर से अजीब आवाजें आ रही हैं।" इंदू झूले पर झूलती रही। कम्पाउण्ड के बाहर से आवाजें आती रहीं।

"कैसी आवाजें? पैरों की आहटें।" हां, बहुत से लोग कम्पाउण्ड के पास आ रहे थे। इंदू ने झूले को और ऊंचा ले जाकर देखा। बहुत से पुलिस वाले आनन्द भवन को घेरे थे। आनन्द भवन के दरवाजे पर उनका एक दल खड़ा था।

उत्तेजना में इंदू ने चिल्लाकर कहा! "पुलिस आ गयी है।" आया ने डर के पूछा, "क्यों? किसलिए?"

"तुम अनुमान नहीं लगा सकतीं?" इंदू ने कहा, "पुलिस क्यों आती है? नेताओं को गिरफ्तार करने! और क्यों?" इंदू ने उत्तर दिया।

"हम क्या करें?" आया ने असहाय भाव से हाथ मलते हुए कहा।

"रुको, और देखो", इंदू ने कहा। उन्होंने झूला रोका और उस पर से उतरी। इसके बाद वह सीधे उस जगह दौड़ी गयी जहां नेता लोग बात कर रहे थे। वहां कमरे में घुसते ही जवाहरलालजी ने इंदू को देखा। उन्होंने गुस्से से देखा, "इंदू. . .! तुम यहां क्यों आयीं?"

"आपको यह चेतावनी देने कि पुलिस ने आनन्द भवन को चारों तरफ से घेर लिया है", इंदू ने उत्तर दिया।

"बातचीत यकायक रुक गयी। इंदू ने कहा, "पुलिस मकान के चारों ओर खड़ी है। लगभग एक दर्जन पुलिस वाले फाटक पर खड़े हैं।"

"अब हम क्या करें? ये कागज पत्र जिन पर विचार-विमर्श हो रहा था. . . पुलिस के हाथ नहीं पड़ने चाहिए। इन में हमारे कार्यक्रम हैं, रणनीतियां

हैं। हमें किसी भी तरह इन कागजों को यहां से हटा देना चाहिए।" एक नेता ने कहा।

इंदू ने कागजों को देखा। काफी मोटी फाइल थी। इंदू ने सोचा कि इस फाइल को उसके स्कूल के बैग में रखा जा सकता है या नहीं? फिर उसने मुस्कुराते हुए कहा, "शायद मैं कूरियर का काम कर सकती हूं। मैं इस फाइल को अपनी किताबों में रख सकती हूं। किसी को कोई संदेह भी नहीं होगा।"

"किसी ने तुम्हें पकड़ लिया तो. . .?" एक ने संदेह प्रकट किया।



"अब. . .ये फाइल मुझे दीजिए। स्कूल जाने का समय हो गया। अगर मैं समय पर नहीं पहुंची तो मेरी टीचर मुझ पर नाराज होगीं. . ." इंदू ने जल्दी से फाइल उठाई और बाहर भाग गयी।

नेहरूजी थोड़ा मुस्कुराए और बच्ची ने जो साहस दिखाया था उस पर प्रसन्नता प्रकट की। इंदू अपने आपको 'जोन आफ आर्क' समझती थी।

मिनटों में इंदू स्कूल जाने को तैयार हो गयी। उसने किताबों में फाइल छिपा ली।

इसके बाद वह बाहर आ गयी। कार में बैठ गयी। कार धीरे-धीरे आगे फाटक की तरफ बढ़ी। जो सिपाही गेट पर खड़े थे। उन्होंने ड्राइवर से कार को रोकने का इशारा किया। एक पुलिस वाले ने कार के दरवाजे में सिर डालकर अन्दर की तरफ देखा। उसने इंदू को देखा। उसने किताबों का बस्ता देखा। उसमें कुछ भी संदेहास्पद नहीं था। उसने चैन की सांस ली। कार में कोई नेता नहीं था। इंदू ने ड्राइवर से कहा, "जल्दी चलो। अगर देर हो गयी तो टीचर बहुत नाराज होंगी।". . .

"रुको।" दूसरे पुलिस अधिकारी ने कार के अन्दर सिर डालकर कहा, "मैं बैग की तलाशी लूंगा। पता नहीं उसमें क्या हो?"

"और तुम मुझे स्कूल के लिए देर करोगे? मूर्ख। ये मेरे स्कूल की किताबें हैं। क्या ये दिखलाई नहीं पड़ रहा?" इंदू चीखी। वह भयग्रस्त हो गयी थी।

"कौन जाने उसमें कुछ ऐसे कागज पत्र हों जो आपके पिताजी और उनके मित्रों ने तैयार किए हों", पुलिस कर्मचारी ने कहा, "और आप उन्हें बाहर ले जा रही हों।"

"क्या आप समझते हैं, मेरे पिताजी मुझे ऐसे खतरे में डालेंगे? थोड़ी तो अक्ल रखिए?" . . .इंदू ने तर्राई आंखों से देखा। . . .फिर ड्राइवर से कहा, "आगे बढ़ो, प्लीज", और फिर इंदू ने पुलिस वाले की तरफ देखकर कहा, "रोको, मुझे। . . .अगर रोक सकते हो तो।"

पुलिस वाला मुस्कुराया। बोला, "अच्छा बच्चे, आप जा सकते हैं।"

इंदू सीट पर आराम से बैठ गयी। मन-ही-मन हंसी। उन्होंने अपना काम कर दिया था, राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्य का निर्वाह कर दिया था।

सेर को सवा सेर

लन्दन के छात्र समुदाय में हिदायतुल्ला विख्यात थे। उनकी बुद्धि बड़ी प्रखर थी। वे अपने विचार बहुत स्पष्ट ढंग से व्यक्त कर सकते थे। वे साहसी थे। उनमें आत्मविश्वास था। ये कुछ गुण उनमें थे जिनकी वजह से उन्हें प्रतिभाशाली माना जाता था।

एक बार वाद-विवाद में उन्होंने हिस्सा लिया। विषय था - 'विश्व मामलों में एशिया की भूमिका'।

उनके खिलाफ कृष्ण मेनन को बोलना था। कुशाग्र बुद्धि मेनन कटुभाषी भी थे, जो भी उनसे असहमत होता अथवा तर्क करता उसको वे सहन नहीं करते थे।

यथासमय सब छात्र सभास्थल पर एकत्रित हो गए। वे दोनों प्रतियोगियों के वाक्‌युद्ध को देखना चाह रहे थे। वे उम्मीद कर रहे थे कि दोनों के बीच होने वाली मौखिक आतिशबाजी देखने को मिलेगी। तरुण हिदायतुल्ला मेनन की वाक्‌युद्ध की प्रतिष्ठा और भाषण क्षमता से भयभीत नहीं हुए। वे अपने दृष्टिकोण को दृढ़ता से व्यक्त करने के लिए तैयार थे।

हिदायतुल्ला ने अपना मत विस्तार से प्रकट किया। अपने भाषण में एशियावासियों के संदर्भ में हिदायतुल्ला ने उन्हें 'एशियाटिक' कहा।

मेनन ने इस शब्द (एशियाटिक) पर आपत्ति की। उन्होंने 'एशियाटिक' पर आपत्ति करते हुए कहा कि "इस की तुक 'ल्यूनेटिक' (पागल) से मिलती है।" इस पर लोगों ने बड़े जोरों का अट्टहास किया। इसके बाद अपने स्वर में व्यंग इंगित करते हुए हिदायतुल्ला की तरफ मुड़कर उन्होंने कहा, "आप इस शब्द को काम में लाने के लिए स्वतंत्र हैं। लेकिन आप यदि इसकी जगह 'एशियन' शब्द काम में लाते तो ज्यादा अच्छा था।"

लोगों ने जोर से करतल ध्वनि की।



छात्रों ने समझा कि हिदायतुल्ला पराजित हो गए।

एक क्षण के लिए हिदायतुल्ला ने सोचा कि वे हार गए। वे आशा के विपरीत लगे आरोप से चकरा गए। वे इस व्यंग्य बाण के लिए तैयार नहीं थे।

लेकिन वे संभल गए। और अपनी बात पर दृढ़ता से डटे रहे। वे लोगों की हंसी थमने तक चुप रहे। फिर गला साफ किया। यह इस बात का संकेत था कि वे अपना वक्तव्य जारी रखने के लिए तैयार हैं।

मेनन अपनी कुर्सी की पीठ से लगकर बैठ गए। उनके ओठों पर संतोष की मुस्कान उभर आयी थी। वे समझ गए थे कि उन्होंने प्रतिस्पर्धी पर ऐसा घातक प्रहार किया है जिसके प्रभाव से वह जल्दी नहीं उबर सकेंगे। मेनन उनकी सजगता से परिचित नहीं थे।

मेनन को उनकी सलाह के लिए शिष्टतापूर्वक धन्यवाद देते हुए हिदायतुल्ला ने कहा, "मैं एशियाटिक शब्द ही पसन्द करूंगा. . ."

यहां वे थोड़ा ठहर गए। मेनन मुस्कुराए। इससे उनका इशारा था कि हिदायतुल्ला यह न भूलें कि 'ल्यूनेटिक' शब्द से उसकी तुक कितनी जमती है।

हिदायतुल्ला ने अपने चारों तरफ देखा। समस्त श्रोतागण सांस रोके बैठे थे जो लोग हिदायतुल्ला की क्षमता से परिचित थे वे समझ गए कि वे कोई करारा जवाब देने वाले हैं। वे नहीं जानते थे कि वह अनुभवी मेनन के प्रहार से बच निकलेंगे। हिदायतुल्ला ने कहा।

"मुझे मेनन को 'एशियान' कहने में कोई आपत्ति नहीं है, हालांकि इसकी तुक 'सीमियन' से अच्छी बैठती है।"

पूरी सभा अट्टहास से गूंज उठी। केवल मेनन चुप बैठे रहे। लगता था कि वे वहां हैं ही नहीं। हिदायतुल्ला ने बाजी उलट दी थी। जैसे को तैसा उत्तर दे दिया था।

मेनन ने 'एशियाटिक' शब्द पर इसलिए आपत्ति की क्योंकि उसकी तुक 'ल्यूनेटिक' (पागल) से बैठती थी। उन्होंने सलाह दी थी कि हिदायतुल्ला 'एशियन' शब्द को इस्तेमाल करें। हिदायतुल्ला ने बदले में बताया कि 'एशियान' शब्द की तुक 'सीमियन' शब्द से (बन्दर जैसा) बैठती है। इस तरह शब्दों का यह खेल बराबरी पर छूट गया।

सटीक उत्तर

डी.एम.के. नेता अन्नादुराई एक सभा में भाषण देने वाले हैं, यह खबर कुछ विद्यार्थियों तक पहुंची। उन्होंने अन्नादुराई की हाजिरजवाबी के बारे में अनेक बातें सुनी थीं। अन्ना तमिल में बोलने वाले उत्कृष्ट वक्ताओं में थे। वे अंग्रेजी भी बहुत अच्छी बोलते थे।

छात्रों ने सोचा कि वे अन्नादुराई की अंग्रेजी की योग्यता का परीक्षण करेंगे। उन्होंने अपनी बैठक की जिसमें उन्होंने विभिन्न योजनाओं पर विचार किया।

एक छात्र को बढ़िया विचार सूझा। उसने अपने मन में आया विचार अन्य विद्यार्थियों को बताया। उसने कहा, "मैं अन्नादुराई से अंग्रेजी में सवाल पूछूंगा। पता नहीं, वे सन्तोषजनक उत्तर दे पाएंगे या नहीं। लेकिन यदि उन्होंने सन्तोषजनक उत्तर दे दिया तो मुझे उन्हें एक महान व्यक्ति के रूप में स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं होगी।"

उस छात्र के मित्रों ने एक दूसरे की तरफ देखा। उन्हें लगा कि प्रश्न चतुराई भरा है। प्रश्न के उत्तर से नेता की होशियारी का पता लग सकेगा।

यहां तक मामला तय हो गया।

छात्र, सभा के लिए तय तारीख का बड़ी उत्सुकता से इंतजार करने लगे। कुछ विद्यार्थी, जो गुप्त प्रश्न जानते थे, को छोड़कर, अन्य लोगों को इस बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं था।

अन्नादुराई जब सभा स्थल पर पहुंचे तो लोगों ने उनका जोरदार स्वागत किया। तमिलनाडु के लोग लोकप्रिय नेता को प्रेमवश अन्ना (बड़े भाई) के नाम से संबोधित करते थे। वे मंच पर पहुंचे। उन्होंने सभा में आए लोगों का अभिनन्दन किया। उन्होंने हाथ जोड़ कर लोगों के अभिनन्दन को स्वीकार किया।

प्रबन्ध समिति के एक सदस्य ने स्वागत भाषण पढ़ा। समिति के अध्यक्ष ने अन्नादुराई से भाषण देने का अनुरोध किया।

अन्नादुराई भाषण देने खड़े हुए। वे माइक तक गए। एक बार फिर हाथ हिलाकर उन्होंने लोगों का स्वागत किया तथा उनके शान्त होने तक प्रतीक्षा की। और फिर बोलने के लिए तैयार हो गए।

तभी एक छात्र खड़ा हो गया। वह अग्रिम पंक्ति में बैठा था। उसकी आवाज तीक्ष्ण और तेज थी। वह बोला, "श्रीमन् क्या भाषण के पूर्व आप अंग्रेजी में मेरे लिए एक ऐसे वाक्य की रचना कर सकेंगे जिसमें एक के बाद एक तीन बार 'क्योंकि' शब्द का प्रयोग किया गया हो।"

छात्र ने इसके बाद मुस्कुराते हुए चारों तरफ देखा।

लोगों ने जब प्रश्न सुना तो उन्हें बुरा लगा। उनकी समझ में नहीं आया कि अन्नादुराई प्रश्न का उत्तर किस प्रकार देंगे। कोई नहीं जानता कि ऐसी कठिन स्थिति से वे किस प्रकार उबरेंगे। सब लोग गंभीर मुद्रा में बैठ गए और प्रतीक्षा करने लगे कि लोकप्रिय नेता किस प्रकार कठिन परिस्थिति से निकलने का रास्ता निकालते हैं।

अन्नादुराई के चेहरे पर क्षण भर के लिए चिन्ता के बादल छा गए। इसके बाद फिर उनके मुंह पर शान्ति छा गयी।

उन्होंने अपना हाथ हल्का-सा उठाया, यह आश्वस्त करने के लिए कि फ्रिक की कोई बात नहीं है। वे उत्तर जानते हैं। जिस छात्र ने प्रश्न पूछा था वह सिटपिटा गया। अन्नादुराई ने छात्र की तरफ देखा और कहा, "ए! मेरे मित्र। यह बड़ा सरल सवाल है। कोई वाक्य 'क्योंकि' से समाप्त नहीं हो सकता क्योंकि, 'क्योंकि' समुच्यबोधक है।

छात्र ने अन्नादुराई का जोरों से ताली बजाकर स्वागत किया। अन्नादुराई ने अपनी योग्यता सिद्ध कर दी थी। सभी 'क्योंकि' (Because) कंजक्शन समुच्यबोधक होते हैं और अन्नादुराई 'क्योंकि' की यह विशेषता जानते थे।

महाराजा या जनसेवक

मेहताब कौर की समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे?

उसका दो साल का पुत्र रोए चला जा रहा था। ऐसा लगता था कि उस के कहीं दर्द हो रहा था। बेचारी असहाय थी। कुछ कर नहीं पा रही थी।

मेहताब कौर ने उसे गले से लगाकर चिपका लिया। गालों को थपथपाया। बालों में उंगली डालकर उन्हें संवारा। गोद में लिटाकर झूले की तरह झुलाया लेकिन बच्चा रोता ही रहा।

"लोरी, सुनोगे?" धीरे से मां ने अपने आपसे ही कहा।

बेटे को झुलाते हुए सोचने लगी क्या सुनाऊं? उसे कई लोकगीत याद थे। एक गीत तो उसने खुद लिखा था, उसने वही गीत गाने की सोची।

वह गाने लगी। उसकी आवाज में दम था और वह साफ थी। पहले वह धीरे-धीरे गुनगुनाई। इसके बाद आवाज ऊंची उठाई। वह गा रही थी और खुश हो रही थी क्योंकि बच्चे का रोना बंद हो गया था।

वह उत्साहपूर्वक गा रही थी। गाने का भाव था, "मेरे बच्चे, तुम शान से रहो। रणजीत सिंह तो तुम्हारा दास है। वह हमेशा तुम्हारी मदद करेगा। . . .मेहताब कौर बेचारी क्या करेगी - वह तुम्हारी क्या रक्षा करेगी?"

महाराजा रणजीत सिंह के दरबार के कुछ लोग सड़क से गुजर रहे थे। वे रुक गए, गीत की धुन बड़ी मधुर थी। वे सावधानी से सुनने लगे। जब उन्होंने सुना कि महाराजा रणजीत सिंह बच्चे का नौकर है, दास है, अधिकारी रुष्ट हो गए। यह औरत उनके शक्तिशाली महाराज को बच्चे का नौकर कहने का साहस कैसे कर रही है? कितनी अशिष्ट है यह, कितना घमंड है इसे।

उन्होंने औरत को दंडित करवाने की ठानी।



अधिकारियों में से एक ने दरवाजा खटखटाया।

मेहताब कौर ने गाना रोक दिया। और पूछा, "कौन है?"

"हम हैं, महाराजा के अधिकारी।" उन्होंने जरा कठोर स्वर में कहा।

"क्या?" मेहताब कौर के दिल में डर समा गया। उसने डर पर किसी तरह काबू पाया। उसने कोई गलत काम नहीं किया था फिर वह क्यों डरे? हर आदमी जानता है कि महाराजा रणजीत सिंह न्यायप्रिय हैं और भलीभांति न्याय करते हैं।

बच्चे को छाती से लगाकर वह दरवाजे पर गयी और दरवाजा खोल दिया। वह वर्दीधारी अधिकारियों को देखने लगी।

"अन्दर आइए" उसने नम्रता से कहा।

"हमने तुम्हें एक गीत गाते सुना। क्या तुम उसे फिर गा सकती हो?" अधिकारियों के दल के नेता ने कहा।

"वह गाना तो मैंने ही रचा है। यह तो ग्रामीण औरत की रचना है। रचना साधारण है।" उसने बात टालनी चाही।

"लेकिन हम वह गीत सुनना चाहते हैं। हमें लगता है कि तुमने उसमें हमारे महाराज का अपमान किया है।"

"महाराजा रणजीत सिंह का अपमान किया है? मैं उनका सम्मान करती हूं। पूजा करती हूं। वे हमारी रक्षा करते हैं। हमें बचाते हैं। मैं महाराजा का कभी अपमान नहीं कर सकती।" औरत ने उत्तर दिया।

"गीत में कहा गया है कि महाराजा तुम्हारे बच्चे के नौकर हैं?" अधिकारी ने कहा।

मेहताब कौर ने उत्तर देने में कुछ समय लिया। फिर उसने धीरे से कहा, "हां, यह सच है।" वह सोचने लगी 'क्या उसने कुछ गलत किया है?'

अधिकारी ने कहा, "हमारे साथ चलो।"

मेहताब कौर के पास कोई चारा नहीं था। वह अधिकारियों के पीछे चल दी। वह बच्चे को साथ लिए थी। उसे पता नहीं था कि भविष्य में क्या होगा।

जल्दी ही वे सब महल में पहुंच गए। अधिकारी मेहताब कौर को महाराजा के सामने ले गए। वे महाराजा के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए उनके सामने झुक गए। मेहताब कौर भी झुक गयी। उसने जमीन को चूमा और उठ खड़ी हुई।

महाराजा रणजीत सिंह ने कहा। "क्या मामला है?"

अधिकारियों के नेता ने उत्तर दिया। "इस औरत ने आपका अपमान किया है।"

"क्या तुमने मेरा अपमान किया है?" महाराजा रणजीत सिंह ने मेहताब कौर से पूछा।

"नहीं मेरे मालिक। मैंने केवल एक गीत गाया। अपने बच्चे के लिए। वह गीत मैंने लिखा था।"

"क्या तुम मुझे वह गाना सुना सकती हो?" महाराजा ने पूछा।

"मैं गायिका नहीं हूं।" स्त्री ने अपना सिर झुका लिया।

"अगर तुम अपने बच्चे के लिए गा सकती हो तो तुम मेरे लिए भी गा सकती हो।" रणजीत सिंह ने महिला को उकसाया।

"ठीक है। महाराज!" वह औरत गाने के लिए तैयार हो गयी।

उसने गाया। जिसका भाव यह था। "बच्चे, तुम्हें गर्व होना चाहिए क्योंकि रणजीत सिंह तुम्हारे सेवक हैं।"

अधिकारी ने बीच में टोकते हुए कहा, "सुना महाराज। यह कह रही है कि आप इसके लड़के के नौकर हैं।"

महाराजा ने दाढ़ी पर हाथ फेरा। और फिर कहा, "यह औरत ठीक कह रही है। महाराजा और उनके नौकर सब जनता के नौकर हैं।" अधिकारी सिटपिटा गए। उस औरत ने महाराज की आंख की तरफ देखा। महाराजा की आंख में चमक थी। "तुम जा सकती हो, बहन। तुम्हें अपने ऊपर, तथा सब लोगों पर गर्व होना चाहिए कि मेरे रूप में उनका नौकर है।" यह कह महाराजा रणजीत सिंह ने उस औरत को विदा किया।

प्रेम की विजय

खेलने का समय हो गया था। लड़के-लड़कियां सब सड़कों पर निकल आए थे। वे अपने गांवों से लगे खुले मैदान में आ गए थे। वे सभी उत्साह से भरे हुए थे। और आपस में हंसी-मजाक के लिए तैयार थे।

लड़के *गुल्ली-डण्डा* खेल रहे थे। *कबड्डी* खेल रहे थे। पेड़ों पर चढ़ रहे थे। वे एक डाल पकड़कर दूसरी डाल पर झूल रहे थे। बिल्कुल बन्दरों की तरह।

लड़कियां एक दूसरे के पीछे भाग रही थीं। वे एक दूसरे को पकड़ रही थीं। वे 'पकड़ो, पकड़ो' खेल रही थीं। कुछ रस्सी पर कूद रही थीं। वह गिन रही थीं, पहली लड़की से दूसरी लड़की ज्यादा बार कूद पाती है या नहीं।

बच्चे खेलकूद में समय बिता रहे थे। दौड़ते हुए ज्यादा-से-ज्यादा धूल उड़ा रहे थे। यह उनके खेलकूद का समय था। वे चीख-चिल्ला रहे थे। तालियां बजा रहे थे। अपनी खुशी और प्रसन्नता विभिन्न प्रकार से प्रकट रहे थे।

यकायक एक लड़का रुककर कुछ सुनने लगा। उसे कुछ असाधारण आवाज सुनाई पड़ रही थी। अन्य लड़के भी उसके पास आ जुटे। उन्हें जल्दी-जल्दी पैरों के चलने की आहट सुनाई पड़ने लगी। लेकिन वे समझ नहीं सके कि यह कैसी और किसके पैरों की आहट है।

लड़कों ने इशारा किया कि लड़कियां दूर हट जाएं। लड़कियां इशारा समझ गयीं।

लड़कों ने शोर सुना। बाद में धीरे-धीरे यह और बढ़ गया। फिर उन्होंने कुछ आदमियों के तेज भागने की आवाजें सुनीं। वे डरे हुए थे। और शीघ्र से शीघ्र सुरक्षित स्थान पर पहुंचना चाहते थे।

उन भागते आदमियों में से एक ने, लड़कों से कहा "जल्दी से घर



जाओ। छिप जाओ। एक हाथी खुल गया है। लगता है वह पागल हो गया है। वह लोगों के पीछे भाग रहा है। वह किसी भी समय यहां पहुंच सकता है।"

अधिकांश बच्चों ने सलाह को पूरी तरह सुना भी नहीं। वे पहले ही भागने लगे थे।

चार लड़के, इनमें वर्धमान नाम का एक तेज लड़का भी था। अपने स्थान पर रुके रहे। वे इधर-उधर चारों तरफ पेड़ों को देख रहे थे जिन पर जरूरत पड़ने पर वे अपनी रक्षा के लिए चढ़ सकते थे।

वे हाथी देखना चाहते थे। उन्होंने जंजीरों में बंधा हाथी देखा था। उन लोगों ने महावत को हाथी ले जाते देखा था। लेकिन खुला हाथी नहीं देखा था।

मैदान के किनारे जो झाड़ियां थीं उनको कुचलते हुए उन्होंने हाथी को आते देखा। वह गुस्से से चिंघाड़ रहा था। चिंघाड़ने की प्रतिध्वनि चारों ओर फैल रही थी। उसने अपनी सूंड़ उठा ली थी। और गुलमोहर के कई पेड़ उखाड़ दिए थे। इसके बाद हाथी ने पेड़ों को सूंड़ से उठाकर दूर फेंक दिया।

हाथी खड़ा हो गया। वह गुस्से से चारों तरफ देखने लगा। चारों तरफ सूड़ घुमाने लगा। फिर उसकी नजर लड़कों पर पड़ी। वह जोर-जोर से चिंघाड़ने लगा। चिंघाड़ने की आवाज चारों ओर प्रतिध्वनित होने लगी।

वर्धमान को छोड़ अन्य सभी लड़के सुरक्षित स्थानों पर भाग गए। वे पेड़ों पर चढ़ गए। वे बड़ी-बड़ी मजबूत शाखाओं पर बैठ गए। और चिल्ला-चिल्ला कर वर्धमान से कहने लगे कि वह भी किसी सुरक्षित स्थान पर पहुंच जाए। वर्धमान ने उनकी बात नहीं सुनी। वह अपनी जगह पर खड़ा रहा। चट्टान की तरह। वहां से इंच भर भी नहीं खिसका।

लड़के सांस रोककर अपने-अपने स्थान से देखते रहे। वे सोच रहे थे कि देखें अब क्या होता है? हाथी अब वर्धमान को सूंड़ में लपेटेगा? क्या हाथी उनके दोस्त वर्धमान को अपने पैरों के नीचे पटककर कुचल डालेगा? क्या वर्धमान को वैसे ही तोड़-मरोड़ डालेगा जैसे वृक्षों को उखाड़ डाला था? या फिर उछालकर फेंक देगा।

ये आशंकाएं उनके मन में उठ रहीं थी।

तभी उन्होंने देखा वर्धमान हाथी की ओर बढ़ रहा था। वे सोचने लगे कि 'वर्धमान पागल हो गया है क्या? उसे पता नहीं है कि वह कैसे खतरे में है। वह खतरे के मुंह में क्यों जा रहा है?'

वर्धमान ने कुछ मीठे शब्द कहे। उसने हाथी की तरफ करुणापूर्ण ढंग से देखा। वर्धमान ने अनुभव किया कि हाथी प्रेम चाहता है। वर्धमान ने मन में कहा वह उससे प्रेमपूर्ण व्यवहार ही करेगा। इसके बाद वह उसे उस जगह ले जाएगा जिस जगह हाथी को रखा जाता था।

वर्धमान धीरे-धीरे हाथी के पास बढ़ता गया हाथी उसकी तरफ देखता रहा। वह अपनी सूंड घुमाता गया। वह जोरों से चिंघाड़ता रहा। लेकिन वर्धमान इससे डरा नहीं। वर्धमान ज्यों-ज्यों हाथी के निकट आता गया उसके चेहरे पर मीठी मुस्कान बढ़ती गयी। फिर वह रुक गया। वर्धमान बिल्कुल सूंड़ के निकट उसकी पहुंच के दायरे में था। उसने कुछ मधुर शब्द कहे। आश्वासन भरे शब्द कहे। हाथी ने भी प्रतिक्रिया व्यक्त की। हाथी ने अपनी सूंड़ को वर्धमान की तरफ बढ़ाया और वर्धमान ने उसे प्यार से थपथपाया। वर्धमान को उसने और पास आने दिया। पैर आगे बढ़ाकर हाथी ने वर्धमान को अपनी पीठ पर बैठ जाने दिया। वर्धमान के पैर हाथी की गरदन पर झूलते रहे। वर्धमान थोड़ा आगे झुक गया। उसके माथे को थपथपाया। उसकी गरदन पर अपनी हथेली फेरी। कानों को खुजलाया। हाथी ने कोई विरोध नहीं किया। वह फिर से शान्त और पालतू लग रहा था।

अपना सिर हिलाते और प्रसन्न भाव प्रकट करते हुए हाथी आगे बढ़ा। वह धीरे-धीरे मन्दिर के अन्दर तक पहुंच गया। वह शान्त भाव से उसी जगह जाकर रुक गया जहां वह आमतौर पर जंजीर से बंधा रहता था।

हाथी ने अपना एक पैर आगे बढ़ा दिया जिससे वर्धमान उतर सके। उसने हाथी की सूंड़ पकड़ ली और दिखलाया कि वह उससे कितना प्यार करता है। और उसके बाद वह उसके पास से चला गया।

वर्धमान ने जो कुछ किया उसकी खबर जंगल में आग की तरह फैल गयी। वर्धमान के दोस्त उसकी प्रशंसा करने लगे। लड़कियां सराहना करने लगीं। सब लोग उसे महावीर कहने लगे।

शैतानों को पालतू बनाना

मारेल साहब साक्षात दैत्य थे। खुलना के निर्धन किसान यही सोचते थे। वे उनसे बहुत डरते थे। वे *गोरा साहब* थे। भारत में उस समय ब्रिटिश राज था। उस समय देसी लोगों का दमन किया जाता था। उनका शोषण किया जाता था। अगर उनके साथ कभी कोई गैर कानूनी काम भी किया जाता था तो भी स्थानीय प्रशासन उनको कोई राहत नहीं देता था।

देसी लोगों पर मारेल को जो अधिकार मिला हुआ था, वह उसका पूरा फायदा उठाता था। अपनी मर्जी के अनुसार मारेल किसानों से काम कराता था। वह किसानों की अधिकांश जमीन पर नील उगवाता था। किसान अपनी जमीन पर अनाज की फसल उगाना चाहते थे। लेकिन मारेल उनको ऐसा नहीं करने देता था। वह नील की खेती करता था। नील की खेती से खूब रुपया मिलता था। यूरोप में उसकी बड़ी मांग थी। नील रंगों तथा अन्य कई चीजों के लिए मौलिक पदार्थ था।

किसान बड़ा परिश्रम करते थे। वह जितना भी नील उगाते, मारेल वह सब स्वयं ले जाता था। इसके लिए किसानों को मामूली रकम मिलती थी। अनाज खरीदने के लिए उनके पास पैसे नहीं होते थे। अधिकांश जमीन पर उन्हें अन्न की कोई फसल नहीं बोने दी जाती थी।

कोई भी इस अन्याय के खिलाफ आवाज नहीं उठाने पाता था।

मारेल कोई कानून नहीं मानता था। वह समझता था उस पर कोई कानून लागू नहीं होता। उसके पास तीन सौ आदमियों का दल था जो सारी नील एकत्रित करता था। जो कोई भी विरोध करता था उसे मारकर चुप करा देते थे।

सारे स्थानीय पुलिस अधिकारी मारेल के दोस्त थे। वह त्यौहारों पर

उनको उपहार देता था। जब भी पुलिस वालों को रुपए की जरूरत पड़ती वे *गोरे साहब* के पास जाते, जो बिना हिचकिचाहट उनको पैसे दे देता। खुलना 1857-58, स्वतंत्रता की लड़ाई से भी अछूता रहा। अब उस घटना चक्र को स्वतंत्रता का युद्ध कहा जाता है। मारेल का जितने क्षेत्र में प्रभाव था उसे मारेलगंज कहा जाता था।

जब उसके दोस्त लाइटफुट ने यह खबर दी कि 'एक भारतीय युवक बंकिमचंद्र डिप्टी मजिस्ट्रेट नियुक्त किया गया है', तो वह हंस दिया।

"तुम्हारा मतलब है कि वह युवक है। क्या उम्र है उसकी?" मारेल ने पूछा।

"अभी हाल में वह बीस वर्ष का हुआ है" लाइटफुट ने उत्तर दिया।

"अच्छा . . .हम उसके बारे में चिन्ता नहीं करेंगे। या तो हम उसे खरीद लेंगे या हम उसे डराकर उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम कर देंगे।" मारेल जोर से हंसा।

"बरखाली गांव में हमें कुछ समस्या का सामना करना पड़ रहा है। वहां के किसान नील नहीं पैदा कर रहे हैं। जब तक हम उन्हें अनाज पैदा करने के लिए ज्यादा जमीन नहीं देते तब तक वे नील पैदा नहीं करेंगे।" लाइटफुट ने स्थिति स्पष्ट की।

"वे मेरे आदेश की अवज्ञा कैसे कर सकते हैं? उन्हें पता नहीं क्या कि यहां मेरा हुक्म चलता है?" क्रोध से मारेल बोला।

"मेरे दोस्त मैंने उन्हें यह सब बता दिया। हमारे आदमियों ने भी किसानों की अक्ल दुरुस्त करने की कोशिश की। लेकिन कुछ अपनी जिद पर अड़े हैं। उनके खिलाफ कार्रवाई करनी होगी, नहीं तो अन्य गांवों तक भी बात फैल जाएगी। वे भी अनाज ज्यादा पैदा करने के लिए अधिक भूमि मांगेंगे। इससे हमारा लाभ मारा जाएगा।" लाइटफुट ने उत्तर दिया।

"इस सब के पीछे कौन है?" मारेल ने पूछा।

"रहीमुल्ला" लाइटफुट ने नाम बता दिया।

"अपने आदमियों को रात में भेजो। जो कुछ भी गांव में हो . . . झोंपड़ियां, फसल, चारा, खेत का अनाज सब जला डालो। अगर कोई विरोध करे तो उसे गोली मार दो। हम उन देसियों को बता देंगे कि हंटर किसके हाथ में है?" मारेल गरजा।

"लेकिन डिप्टी मजिस्ट्रेट नया है। हमें पता नहीं कि उसकी प्रतिक्रिया क्या होगी?" लाइटफुट ने चेतावनी दी।

"वह छोकरा . . .मैं उसे सीधा कर दूंगा। चिन्ता मत करो।" मारेल जोर से हंसा। उसने गर्व से सिर उठाकर अपनी ताकत का प्रदर्शन किया।

मारेल के आदमी रात के अंधेरे में चीखते-चिल्लाते वहां पहुंचे। वे बंदूकें



और लाठियां लिए थे। उनके हाथों में जलती मशालें थीं। उन्होंने गांव को घेर लिया। रास्ते में आने वाली हर वस्तु में वह आग लगाते गए। रहीमुल्ला तथा गांव के कुछ अन्य लोग बाकी बची चीजों को बचाने के लिए दौड़े। लेकिन ज्यादा देर उनके पांव टिक न सके। उनकी संख्या बहुत कम थी। एक-एक करके वे गिरते गए। एक गोली रहीमुल्ला के लगी, वह गिर गया। इस प्रकार अत्याचार करने के बाद लुटेरे गांव से चले गए।

दूसरे दिन बंकिमचन्द्र को आपराधिक घटना की पूरी रिपोर्ट मिली। उन्होंने पूरी जांच की। उन्हें पता लगा कि लाइटफुट और एक अन्य अंग्रेज मिस्टर हिल्ली इस काण्ड में शामिल थे। उन्होंने यह काम मारेल के कहने पर किया था।

बंकिमचन्द्र ने एक क्षण भी नहीं गंवाया। फौरन मारेल, लाइटफुट और हिल्ली की गिरफ्तारी के आदेश जारी कर दिए।

युवा डिप्टी मजिस्ट्रेट से मारेल ने से ऐसे आदेशों की उम्मीद नहीं की थी।

लेकिन इन आदेशों से मारेल घबराया नहीं।

उसने अपने आदमी के जरिए युवा मजिस्ट्रेट को संदेशा भिजवाया। संदेशा था कि अगर तुम हम लोगों की गिरफ्तारी के आदेश, वापस ले लो तो बेहतर है। तुम्हें इसके लिए उचित ढंग से पुरस्कृत किया जाएगा।

बंकिमचन्द्र संदेश पाकर आग-बबूला हो गए। उन्होंने संदेशवाहक को वापस भेज दिया और कहलवा दिया कि उन्हें रिश्वत देने की कोशिश की गयी तो आगे और कार्रवाई की जाएगी।

इसके बाद धमकियां आयीं। अगर मारेल साहब को गिरफ्तार किया गया तो मजिस्ट्रेट का जीवन खतरे में पड़ सकता है। बंकिमचन्द्र ने चेतावनी की उपेक्षा कर दी। बंकिमचन्द्र अपने निर्णय पर दृढ़ रहे। वे अपराधियों को पकड़ के ही छोड़ेंगे। उनके खिलाफ कार्रवाई अवश्य की जाएगी।

मारेल को अन्ततः यह महसूस हुआ कि वह बच नहीं सकता। उसने भागने का फैसला किया। उसके साथ लाइटफुट भी था।

उनको ढूंढ़ती हुई, मारेल और लाइटफुट को पकड़ने जब पुलिस पार्टी डिप्टी मजिस्ट्रेट के नेतृत्व में पहुंची तब वे दोनों फरार हो गए। पुलिस ने उनको चारों ओर से घेर लिया। अन्त में हारकर समुद्र के रास्ते वे एक छोटी सी नाव

में बैठकर भाग लिए। उसके बाद कोई नहीं जानता था कि उनका क्या हुआ।

हिल्ली फकीर के वेष में चुपके से भागा और मुंबई पहुंच गया। इंगलैंड जाने के लिए उसने जहाज का टिकट खरीदा। बंदरगाह पर उसे गिरफ्तार कर लिया गया।

मुकदमे के लिए उसे वापस लाया गया।

किसी देसी ने गवाही देने की हिम्मत नहीं की।

इस सबसे बंकिमचन्द्र को कोई चिन्ता नहीं हुई। बंकिमचन्द्र ने प्रस्ताव किया कि मुकदमा किसी और मजिस्ट्रेट को सौंप दिया जाए जो कानूनी कार्रवाई करे। वे स्वयं साधारण नागरिक की भांति गवाही देंगे।

इस प्रकार बंकिमचन्द्र ने कानून की रक्षा की तथा खुलना के किसानों की अंग्रेज शासक वर्ग के अत्याचारों से रक्षा भी की।

वह खबर जो किसी अन्य के पास नहीं थी

विश्व एक बार फिर युद्ध की चपेट में था। एक तरफ हिटलर था जो नाजी सर्वोच्चता का हिमायती था। दूसरी तरफ लोकतंत्रवादी देश थे जिनमें अमेरिका और ब्रिटेन भी थे।

युद्ध की आग सबसे पहले यूरोप में भड़की थी। लेकिन दूसरे विश्व युद्ध का प्रभाव भारत पर भी पड़ा था। उन दिनों भारत पर ब्रिटिश राज था। इसे ब्रिटिश साम्राज्य के मुकुट का हीरा माना जाता था और ब्रिटेन इस हीरे को जब तक हो सके अपने कब्जे में रखना चाहता था।

वातावरण बड़ा उत्तेजनापूर्ण था। हां, ब्रिटिश भारत की ग्रीष्मकालीन राजधानी शिमला अवश्य शीतल, स्फूर्तिदायक और शांत थी।

अनुभवी पत्रकार शिवाराव ने अपना परिचय पत्र दिखलाया और उन सीढ़ियों पर चढ़ना शुरू कर दिया जो उस बड़े हाल तक जाती थीं जहां पत्रकार सम्मेलन का आयोजन किया गया था। वे निर्धारित कुर्सी पर जाकर बैठ गए। उनके बगल में एक वरिष्ठ ब्रिटिश अफसर भी बैठे थे। दोनों ने आपस में विचारों का आदान-प्रदान किया। ब्रिटिश अफसर ने पूछा, "आप किस पत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं?" शिवाराव ने कहा, "वे दो पत्रों का *हिन्दू* और *मैनचेस्टर गार्जियन* का प्रतिनिधित्व करते हैं।"

ब्रिटिश अफसर ने अपनी कुर्सी शिवाराव के पास और खिसका ली, "युद्धकाल में कानून और युद्ध संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए क्या एक ही एक्जीक्यूटिव कौंसिलर' होना चाहिए?"

शिवाराव ने प्रश्न में निहित अर्थ समझ लिया और कहा "दोनों पदों के काम का भार संभालने के लिए पूरा-पूरा ध्यान देने वाले अलग-अलग होने चाहिए। एक ही व्यक्ति रखने की वर्तमान व्यवस्था संतोषप्रद नहीं है।"

अफसर ने शिवाराव की प्रतिक्रिया सुनी और कहा, "जल्दी ही कोई परिवर्तन होने वाला है। मेरे ख्याल से एक अलग ही आपूर्ति मंत्री बनाया जाएगा।"

शिवाराव ने सूचना को नोट कर लिया। इसके साथ शिवाराव ने एक और सूचना जोड़ी जो पहले ही से उनके पास थी। 'सर जफरुल्ला खान कानून और युद्ध संबंधी आवश्यकताओं की आपूर्ति के प्रभारी थे। उनका कार्यकाल शीघ्र समाप्त होने वाला था।'

सर जफरूल्ला खान की कानूनी प्रतिभा का अब ब्रिटिश सरकार किस जगह उपयोग करेगी?

शिवाराव को इस गुप्त खबर को ढूंढ निकालना था। अगर उन्हें यह पहले पता लग जाता कि जफरुल्ला खान का नया पद क्या होगा तो यह ऐसी बड़ी खबर होती जो किसी और के पास नहीं थी।

उन्हें पता था कि इस जिज्ञासा का पता वही लगा सकते हैं। कोई सरकारी सूत्र इसका उत्तर नहीं दे सकता था।

अकस्मात् उन्हें याद आया कि फ़ेडरल कोर्ट में एक जगह रिक्त है। बहुत संभव था कि सर जफरुल्ला खान की नियुक्ति फेडरल कोर्ट के रिक्त स्थान पर हो सकती है।

यह केवल अनुमान मात्र था। उन्होंने इन दोनों तथ्यों को जोड़कर विश्वसनीय खबर बनाने की बात सोची। लेकिन लग रहा था कि इन बातों को जोड़कर अनुमान पर आधारित खबर तो बनाई जा सकती थी। लेकिन इनको तथ्य के रूप में सामने रख कर पक्की 'स्टोरी' नहीं तैयार की जा सकती थी और प्रेस में छापी नहीं जा सकती थी।

शिवाराव ने सोचा कि कुछ और तथ्य एकत्र किए जाएं। पता लगाया जाए कि उनका यह अनुमान किस हद तक सही है।

दूसरे दिन शिवाराव सर बी.एल. मित्तर से मिलने गए। वे उस समय फेडरल कोर्ट में सरकारी एडवोकेट जनरल थे। सर मित्तर ने मुस्कुराते हुए उनका स्वागत किया। वे अपने अध्ययन कक्ष में आरामदेह कोने में शिवाराव को ले गए। वहां उनके चारों ओर किताबों से भरी अलमारियां रखी थीं।

मेजबान और मेहमान जब एक दूसरे का अभिवादन कर रहे थे तो शिवाराव ने अपनी नजर चारों ओर दौड़ायी। उन्होंने बड़ी जल्दी यह देख लिया

कि अलमारियों में कई जगहें खाली पड़ी है। कई पुस्तकें हटाई गयी थीं। उन्हें कहीं और ले जाया गया था।

"इतनी पुस्तकें एक ही समय यहां से कौन ले गया?" शिवाराव ने सर मित्तर से पूछा, "आपकी पुस्तकें कौन ले गया?"

"यह आश्चर्य लग रहा है?" सर मित्तर ने उत्तर दिया। "आज सवेरे सर जफरुल्ला खान मेरे घर आए . . .कुछ ऐसी बात हुई जो पहले कभी नहीं हुई थी। . . .उन्होंने यू.एस. सुप्रीम कोर्ट के फैसला संबंधी सभी रिपोर्ट, मुझसे उधार मांगी।"



शिवाराव लगभग खुशी से उछल पड़े। उनका अनुमान सही सिद्ध हो रहा है।

उन्होंने सर मित्तर के साथ कुछ और समय बिताया। इसके बाद चले आए।

अब उनके मन में सर जफरुल्ला खान के भविष्य के बारे में कोई संदेह नहीं रहा था। सर जफरुल्ला फेडरल कोर्ट के जज नियुक्त होने वाले थे।

फिर भी उन्होंने खबर छपने नहीं भेजी। उन्हें भरोसा था कि अगर वे विधि मंत्रालय गए तो उन्हें कुछ और सूचनाएं मिलेंगी जिससे उनके अनुमान की पुष्टि होगी।

इसलिए, वह सोमवार को विधि मंत्रालय गए। उनका स्वागत एक अधिकारी ने किया। दोनों साथ-साथ चलने लगे। शिवाराव चुपके से लायब्रेरी की तरफ मुड़ गए। उन्होंने चारों तरफ नज़र दौड़ाई। उन्होंने खाली अलमारियां देखीं।

"इन अलमारियों की पुस्तकें कहां गयीं?" उन्होंने पूछा।

"हां, वे किताबें?" उत्तर मिला, "सर जफरुल्ला खान वे सारी रिपोर्टें चाहते थे जो अन्य उपनिवेशों के सुप्रीम कोर्टों ने दी थीं।"

"आहा!" शिवाराव ने अपनी उत्तेजना दबाते हुए कहा जो उस समय उनके मन में उठ रही थी।

अब शिवाराव को विश्वास हो गया कि सर जफरुल्ला को फेडरल कोर्ट के जज का पद दिया गया है और उन्होंने इस पद को स्वीकार भी कर लिया है।

शिवाराव ने अब समय नहीं गंवाया। उन्होंने यह खबर फौरन 'हिन्दू' को प्रकाशनार्थ भेज दी। हिन्दू ने यह खबर छाप दी कि जफरुल्ला खान की नियुक्ति फेडरल कोर्ट के एक जज के रूप हो रही है।

यह खबर गुप्त थी। कोई जानता नहीं था। शिवाराव को कैसे मिल गयी? वायसराय को विश्वास हो गया कि मैंने अवश्य ही कहीं यह फाइल देख ली है। नहीं तो इतने स्पष्ट और सही ढंग से खबर कैसे मिल गयी। जफरुल्ला को बड़ा आश्चर्य हुआ, अटपटा भी लगा पर वे खबर से दूर ही रहे। शिवाराव ने किसी के विश्वास को ठेस नहीं पहुंचायी थी। केवल अपनी कल्पना से काम लिया था। यह समाचार आज भी किसी पत्रकार के लिए सर्वोत्तम स्कूपों में से एक माना जाता है।

जैसे को तैसा

शंकर (के. शंकर पिल्लै जाने माने कार्टूनिस्ट, दुनिया भर के बच्चों के सबसे अच्छे मित्र) लगभग सभी राजनीतिक नेताओं को जानते थे, उन्हें पंडित नेहरू का विश्वास भी प्राप्त था। सरदार पटेल, राजाजी, आचार्य कृपलानी, पंडित पंत आदि भी उनका बड़ा आदर करते थे। इन सबसे उनके अच्छे संबंध थे। लेकिन जब इनमें से किसी का कोई वक्तव्य शंकर को अच्छा नहीं लगता था तो वे उनको बख्शते भी नहीं थे। शंकर उनका भी कार्टून बना देते। वे नेताओं के खाके खींचते थे लेकिन उनके मन में किसी के प्रति कोई दुर्भावना नहीं होती थी। सच तो यह है कि उनमें से कई नेता शंकर द्वारा उनका कार्टून बनाये जाने पर अपने आपको बड़ा गौरवान्वित अनुभव करते थे।

एक मौका ऐसा आया जब शंकर को केन्द्रीय मंत्री केशवदेव मालवीय को पत्र लिखना पड़ा। उन्होंने पत्र लिखा। उसे टाइप कराया और उस पत्र को उनके कार्यालय भिजवा दिया। पत्र डाक द्वारा भेजा गया था।

शंकर, मालवीय जी को अच्छी तरह जानते थे। इसलिए, स्वाभाविक था कि वे उत्तर की आशा करते थे।

दिन गुजरते गए।

फिर एक दिन एक लिफाफा मिला। उस पर सरकारी टिकट लगा हुआ था। शंकर के सहायक ने वह पत्र उनको दे दिया। बड़ी सावधानी से शंकर ने लिफाफा खोला। उसमें से पत्र निकाला। उसमें शंकर के उस पत्र की औपचारिक प्रगति लिखी थी जो शंकर ने मंत्री को लिखा था। बस इसके अलावा और कुछ नहीं। पत्र सामान्य ढंग से लिखा गया था, ठीक उसी तरह जैसे अन्य पत्र लिखे जाते थे। मंत्री के सहायक के उस पर हस्ताक्षर थे।

इस पत्र को पाकर शंकर बड़े नाराज हुए। उन्हें लगा कि उनका अपमान किया गया है।

कितनी ही बार वे केशवदेव मालवीय से मिल चुके थे। घनिष्ठता से वे आपस में बातचीत करते थे। शंकर तब संसदीय कार्यवाही की रिपोर्टिंग करते थे।

मालवीय केन्द्रीय मंत्री हो गए थे। तो क्या इसलिए दोस्तों को भूल जाएंगे? मंत्री एक पत्र स्वयं भेज सकते थे। लिख सकते थे कि मामले पर विचार किया जा रहा है और निर्णय करने में कुछ समय लगेगा। कम-से-कम इतना तो कर ही सकते थे।

यदि वे बहुत व्यस्त थे तो वे बाद में मामले पर विचार करने के बाद उत्तर भेज सकते थे। लेकिन उन्होंने अपने एक अधिकारी से उन्हें जवाब देने को क्यों कहा।

पत्र पढ़कर शंकर को बहुत क्रोध आया।

फिर वे धीरे-धीरे शांत हो गए।

उनका परिहास का भाव उभर आया। उन्होंने सोचा 'वे नाराज क्यों हो रहे हैं? इसके बदले यह अच्छा होगा कि मंत्री को उन्हीं के तरीके से जवाब दिया जाए?' इस विचार से उन्हें कुछ प्रसन्नता हुई। वे मन-ही-मन हंसे। वे वापस अपनी मेज पर आए, अपने पैड में से एक कागज निकाला। उन्होंने पहले विधिवत् धन्यवाद दिया और लिखा। उनका ध्यान आकृष्ट किया था। उस पर वे शीघ्र ही विचार करेंगे।

शंकर ने पत्र फिर पढ़ा।

दस्तखत करने के पूर्व उन्होंने मन-ही-मन कहा, "गुड" उन्होंने पत्र पर शंकर नाम से हस्ताक्षर नहीं किए। शंकर के बजाय उन्होंने रामस्वरूप नाम से दस्तखत किए। दस्तखत के नीचे अंग्रेजी के बड़े-बड़े अक्षरों में रामस्वरूप लिखा। नाम के नीचे उन्होंने लिखा 'शंकर का चपरासी'।

जब शंकर ने पत्र मोड़कर लिफाफे में रखा था तो वे प्रसन्न थे। इतना करके उन्होंने पत्र अपने सहायक को दे दिया और कहा कि "इसे डाक से भिजवा दो और के. डी. मालवीय के नाम से ही भेजना। पता भी लिख देना . . ."

"बहुत अच्छा, सर!" सहायक ने पत्र ले लिया और कक्ष के बाहर चला गया।

पत्र भेजने के बाद शंकर अत्यन्त प्रसन्न थे। वे जानते थे कि इस पत्र से मंत्री को समझ में आ जाएगा कि उन्होंने क्या गलती की है? उन्होंने ईंट

का जवाब पत्थर से दिया है। वे जानते थे कि मालवीय जी समझ जाएंगे कि उन्होंने क्या भूल की है। उन्होंने रामस्वरूप नाम के पात्र की स्वयं रचना की थी। अगर मालवीयजी पत्र का उत्तर अपने पी.ए. से दस्तखत कराके भेज सकते हैं तो उन्हें भी हक है कि वे उसका उत्तर चपरासी से लिखवा और हस्ताक्षर कराके भेजें।

मालवीयजी पत्र पढ़ने के बाद स्तब्ध रह गए। उन्होंने दस्तखत देखे। क्षणभर के लिए वे समझ नहीं पाए कि क्या करें? वे सोचने लगे कि शंकर ने अपने चपरासी को इस पर दस्तखत क्यों करने दिए। उन्होंने दुबारा हस्ताक्षर देखे। ऐसा लगा कि चपरासी के दस्तखत ऐसे नहीं हो सकते। क्या यह मजाक था? अगर ऐसा था तो यह मजाक शंकर ने क्यों किया? धीरे-धीरे उन्हें जवाब मिल गया। पत्र में लिखा था कि शंकर साहब उस पत्र की प्राप्ति स्वीकार करते हैं जो माननीय मंत्री महोदय ने पी.ए. के दस्तखतों से भिजवाया है तो यह बात है। शंकर उन्हें एक तरह से ये सबक दे रहे थे कि मंत्री ने शंकर को उनके लिखे गए पत्र का स्वयं उत्तर क्यों नहीं दिया। वे यह भी समझ गए उनसे गलती हो गयी है।

उन्होंने तुरन्त शंकर से बात की। मालवीय ने बड़ी आत्मीयता से शंकर से उनका हालचाल पूछा। फिर कहा कि, "मुझे खेद है कि आपके पत्र का उत्तर मैंने स्वयं नहीं दिया। उत्तर मुझे ही देना चाहिए था। आपके पत्र का उत्तर पी.ए. से देने को नहीं कहना चाहिए था। आपने 'रामस्वरूप' चपरासी नाम के पत्र की मार्फत जो बोध मुझे दिया है उसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूं।"

इसके बाद "हा हा" करके शंकर जोर से हंस पड़े।

बोरडम से बचने का उपाय

संजीव कुमार को दर्पण में अपनी सूरत देखकर बड़ी वितृष्णा हुई। वे अपने ऊपर विश्वास नहीं कर सके। उनकी बगल में सरोश मोदी खड़े थे। एक स्थान पर वे जहां कुष्ठ रोग के चिन्ह को और स्पष्ट चाहते थे वहां एक बार पाउडर और लगाया। संजीव कुमार ने कोई आपत्ति नहीं की। 'नया दिन, नयी रात' फिल्म में उन्हें कुष्ठ रोगी की भूमिका निभानी थी। उसी की तैयारी की जा रही थी।

फिल्म 'नया दिन, नयी रात' में उन्हें जो नौ भूमिकाएं करनी थीं उनमें एक कुष्ठ रोगी की थी। उनकी ऐतिहासिक चतुराई भरी भूमिकाओं में यह भूमिका भी चुनौतीपूर्ण थी। यह ऐसी चुनौती थी जिसमें उनकी सर्वोत्तम प्रतिभा उभरकर सामने आती। संजीव कुमार में यह प्रतिभा विपुल मात्रा में थी।

सरोश मोदी कुछ पीछे हटे और उन्होंने जो कुछ किया था उसका परिणाम देखा। फिर उन्होंने संजीव कुमार से कहा, "अब आपको कोई पहचान नहीं सकता। हर कोई समझेगा कि आप कोढ़ी हैं। यह बदला रूप बिलकुल कुष्ठ रोगी का है।"

संजीव कुमार ने दर्पण में अपना रूप देखा। जो उन्होंने देखा, वह उन्हें पसन्द आया। जो भूमिका उन्हें अदा करनी थी वह 'मेकअप' में बिलकुल आ गयी थी। उन्होंने उसका श्रेय सरोश मोदी को दिया। उन्होंने कोढ़ी बनाकर कमाल कर दिया था। मोदी ने बड़ी चतुराई से एक साम्मान्य आदमी को कुष्ठ रोगी बना दिया था।

अब समय आ गया था, जब संजीव कुमार को शूटिंग के लिए मद्रास स्टूडियो जाना था। फिल्म में उनकी हीरोइन जया भादुड़ी थीं। वे पहले ही स्टूडियो जा चुकी थीं। उन्हें कुछ दृश्य अकेले फिल्माने थे।

संजीव कुमार और सरोश मोदी कार में बैठकर स्टूडियो रवाना हुए। शीघ्र

ही कार मुड़ी, फाटक के अन्दर वाली सड़क पर पेड़ों के नीचे से चलने लगी। पेड़ों की पंक्ति संजीव कुमार को बड़ी आकर्षक लग रही थी। यकायक उनको जया भादुड़ी दिखलाई पड़ीं। वे एक वृक्ष के नीचे आराम कर रही थीं। वे वृक्ष के नीचे हरी घास पर लेटी थीं। उन्हीं की बगल में मेकअप करने वाली महिला भी थी।

यह दृश्य देखकर संजीव कुमार को शरारत सूझी।

उन्होंने पीछे से ड्राईवर को थपथपाया और कार रोकने के लिए कहा। उन्होंने बतलाया कि वे नीचे उतरना चाहते हैं। कार एक तरफ रोक दी गई। संजीव कुमार बाहर निकले। उन्होंने सरोश मोदी से कहा कि वे बाकी का रास्ता पैदल तयं करेंगे।

कार चली गई।

अब संजीव कुमार लंगड़ाते हुए चलने लगे, ऐसे जैसे कोई कुष्ठ रोगी चलता है।

वे वही पहुंचे जहां जया भादुड़ी विश्राम कर रही थीं। वहां पहुंचकर वे दैन्यभाव से पैसे मांगने लगे। क्षीण और करुण स्वर में बोले, "इस गरीब बेचारे कोढ़ी को कुछ पैसे दे दीजिए। मैंने दो दिनों से कुछ खाया नहीं है। आप कुछ मदद करेंगी तो भगवान आपको आशीष देगा।"

जया भादुड़ी ने याचना भरी आवाज सुनकर अपनी आंखें खोलीं। साफ-साफ देखने में कुछ क्षण लगे। संजीव कुमार जया के बिलकुल पास तक पहुंच गए थे और लगता था कि अपनी कोढ़ वाली उंगलियों से उनको छू लेंगे।

"कोढ़ी" जया चीखीं।

और उन्होंने शोर मचा दिया।

पहले तो उन्होंने मेकअप करने वाली महिला को डांटा। उन्होंने पूछा कि "तुमने इस कोढ़ी को पहले क्यों नहीं देखा और कोढ़ी को उनके इतने पास क्यों आने दिया।" जया भादुड़ी बड़ी तीखी आवाज में चीखीं। उनको बचाने के लिए शूटिंग में मदद करने वाले बहुत से सहायक दौड़ पड़े।

उनकी समझ में नहीं आया कि अभिनेत्री इतनी क्षुब्ध क्यों हो गयीं।

क्या जिस पेड़ के नीचे जयाजी लेटी थीं, उस पेड़ से कोई मकड़ी उन

पर गिर गयी? या उन्होंने कोई सांप देख लिया। जो झाड़ियों से होकर जा रहा था? या कोई भारी फल उनपर गिर पड़ा। जिससे उन्हें चोट लग गयी?

सारे सहायक उन्हें घेरकर खड़े हो गए।

उन्होंने गुस्से में कहा कि "इतने लोगों के रहते एक कुष्ठ रोगी स्टूडियो में कैसे घुस आया? क्या प्रवेश द्वार पर कोई दरबान नहीं था? अगर था तो यह अनजान बीमार आदमी उनसे भीख मांगने अन्दर घुस आने में सफल कैसे हो गया?"

सारे सहायक कोढ़ी की तरफ ताक रहे थे।

वे असहाय थे। कोई भी कुष्ठ रोगी को स्पर्श करना नहीं चाहता था। सभी रोगी पर चिल्ला रहे थे और कह रहे थे कि वह वहां से चला जाए। "भागो! इसी वक्त भागो यहां से।" एक ने फाटक की तरफ अंगुली से बाहर जाने का इशारा किया। दूसरे ने छड़ी लाकर मारने की मुद्रा में भागने के लिए कहा लेकिन कोढ़ी टस-से-मस नहीं हुआ। वहीं खड़ा रहा। उसके बदसूरत चेहरे पर मुस्कान थी। किसी भी धमकी का उस पर कोई असर नहीं हुआ।

मायूस होकर जया खुद ही वहां से हट गयीं। उन्होंने दोनों हाथों की हथेली से अपनी आंखें ढंक लीं।

सहायकों ने डांटा, फटकारा, और जाने के लिए धमकाया लेकिन कोढ़ी पर कोई असर नहीं हुआ।

अन्त में एक सहायक ने कोढ़ी को जबर्दस्ती भगाने की सोची। उसने देखा कि मारने के लिए कोढ़ी पर छड़ी उठाई लेकिन अन्य व्यक्ति ने छड़ी मारने वाले को रोक दिया। वह कोई हिंसात्मक कार्य न करे।

जो कोढ़ी बनने का नाटक कर रहा था उसने अपनी आवाज सामान्य कर ली और भिखारी की मुद्रा भी बदल दी। स्वर सामान्य कर लिया। जब जया ने संजीव कुमार की आवाज सुनी तो उन्होंने आंखों पर से हथेलियां हटायीं। वह सांत्वना के शब्द सुनने की आशा से मुड़ीं। लेकिन संजीव कुमार कहां थे?

"देखो, मैं यहां हूं।" संजीव कुमार ने कहा।

जया ने ध्यान से देखा। अब उनकी समझ में आया। संजीव कुमार कोढ़ी के मेकअप में थे। उन्होंने जया से मजाक किया था।

जया ने कहा, "आपने तो मुझे डरा ही दिया था।"

संजीव ने पूछा, "मैं कैसा लगता हूं?"

जया बोली, "मैं भी आपको पहचान नहीं सकी। आपका मेकअप बिलुकल वैसा है, जैसा होना चाहिए। आप कुष्ठ रोगी लगते हैं। अगर आप बोलते नहीं तो मैं आपको पहचानती ही नहीं।"

इसके बाद दोनों खुशी-खुशी बातें करते हुए स्टूडियो की तरफ चल दिए। संजीव कुमार ने बड़ा सत्य लगने वाला उपहास किया था। उनका कहना था कि प्रतिदिन एक शरारत मन को ऊबने नहीं देता।

अप्रतिम गेंदबाजी

बात (1977-78) की है। भारतीय क्रिकेट टीम उन दिनों आस्ट्रेलिया के दौरे पर थी। मैच के दिन भारतीय क्रिकेट टीम के साथ बी.एस. चन्द्रशेखर भी मैदान में उतरे। वे टीम के साथ देश की सेवा कर रहे थे। उन्हें पोलियो हुआ था और उसका कुछ प्रभाव उनके हाथ पर था। फिर भी उनकी गेंदबाजी से विश्व के बड़े-बड़े बैट्समैन चकित थे। चन्द्रशेखर जानते थे कि उनका क्रिकेट जीवन कुछ ही वर्षों का था। इधर उनकी आयु भी बढ़ रही थी। उनकी गेंदबाजी में पहले जो शक्ति और दंश था वह भी धीरे-धीरे लुप्त हो रहा था। लेकिन उस समय भी वे ऐसी गेंद फेंक सकते थे कि बल्लेबाज खेल नहीं पाता था और बहुधा गलती कर बैठता था। उन्होंने अपनी शैली और ऊर्जा अभी भी नहीं छोड़ी थी। अपने आप को चुस्त और फुर्तीला बनाने के लिए वे थोड़ा इधर-उधर घूमें और व्यायाम किया। मैच अपने ठीक समय पर शुरू हुआ।

जब मैदान में भारत के उतरने की बारी आई तो चन्द्रशेखर प्रसन्न हुए। वे कप्तान द्वारा गेंदबाजी के लिए बुलाए जाने की प्रतीक्षा करने लगे।

कप्तान उनकी तरफ घूमें। उन्हें गेंद दी गयी। अब समय आ गया था जब उन्हें दिखाना था कि गेंद को वे किस तरह 'स्पिन' करते हैं। किस प्रकार बल्लेबाज को सता सकते हैं, किस प्रकार बैट्समैन को गलती करने के लिए मजबूर कर सकते हैं।

उन्होंने गेंदबाजी शुरू की। गेंद फेंकने में उन्होंने अपने अनुभव और चतुराई का प्रयोग किया। इसमें कई बार उन्होंने गेंद को उस समय बैट्समैन के पास पहुंचाया जब वह उतना सतर्क नहीं था जितना होना चाहिए। कई बार बड़े आत्मविश्वास से अपील की कि बैट्समैन के बैट से गेंद स्पर्श हुई है और उसे विकिट के पीछे कैच कर लिया गया है। कई बार 'लेग बिफोर विकेट' की भी अपील की। लेकिन अम्पायारों पर इन अपीलों का कोई असर नहीं हुआ।

उन्होंने अपीलों की उपेक्षा की। वे अपने फैसलों पर अटल रहे। चन्द्रशेखर को उनका यह रवैया समझ में नहीं आया। भारतीय टीम के कुछ खिलाड़ियों को भी लगा कि अम्पायर अजीबो गरीब ढंग से फैसले कर रहे हैं। वे सही-सही फैसले नहीं कर रहे।

चन्द्रशेखर को बड़ी झुंझलाहट हुई। अब उन्हें भरोसा हो गया कि या तो अम्पायर अयोग्य हैं, या पक्षपात कर रहे हैं या वे अपने कर्त्तव्य का पालन ठीक तरह से नहीं कर रहे थे।

मन में अन्दर-ही-अन्दर कुढ़ते पर बाहर से हंसते हुए चन्द्रशेखर ने अगला ओवर फेंकना शुरू किया। उन्होंने तय कर लिया कि गेंद पूरी ताकत से फेंकेंगे ओर अम्पायर को अपनी अपील नामंजूर करने का कोई मौका नहीं देंगे, उन्होंने गेंद फेंकी।

उन्होंने गेंद को स्पिन कराया और इस तरह फेंका कि वह लेग की तरफ बहुत तेजी से आयी। फौरन चन्द्रशेखर ने अपील के लिए हाथ उठाया। गेंद बैट्समैन के पैड पर लगी थी। अम्पायर अपने स्थान पर स्थिर खड़ा रहा। अम्पायर ने चन्द्रशेखर की तरफ इस तरह देखा कि जैसे वे अकारण शोर मचा रहे हैं।

अब चन्द्रशेखर के लिए अपना रोष छिपाना कठिन हो गया। खास तौर पर उस समय जब उनकी बॉलिंग उत्कृष्ट थी और बैट्समैन को कई बार चकमा दे चुकी थी। अम्पायर के फैसले को भारतीय टीम के खिलाड़ियों ने भी अन्यायपूर्ण माना। लेकिन वे भी कुछ नहीं कर सकते थे। सिवा इसके कि हंस दें और जो निर्णय हुआ था उसे स्वीकार कर लें।

किसी तरह चन्द्रशेखर ने अपने गुस्से को संभाला।

एक बार फिर गेंद फेंकने के लिए वे दौड़े। उन्होंने अपना 'टॉप स्पिनर' फेंका। गेंद मिडिल स्टम्प पर पिच हुई। इसके बाद सीधी गयी और उस गेंद ने 'मिडिल स्टम्प' के सामने 'बैक पैड' को, हिट किया। बैक पैड मिडिल के ठीक सामने था। चन्द्रशेखर ने जोर से चिल्ला कर अपील की। विकेटकीपर और जो खिलाड़ी बेट्समैन के पास थे उन्होंने भी अपील की क्योंकि उन्हें फैसले के बारे में कोई संशय नहीं था। बैट्समैन का पैर मिडिल स्टम्प के ठीक सामने था।

अम्पायर ने यह विश्वासपूर्ण अपील भी ठुकरा दी। उसने सोचा कि भारतीय खिलाड़ी बिना बात गला फाड़ कर चिल्ला रहे हैं।

अव्वल दर्जे के खिलाड़ी की कुंठा की हद हो गयी थी। गुस्से में चन्द्रशेखर ने अपने ओंठ काट लिए। वे पीछे हटे और फिर बॉलिंग करने चले गए। वे एक बार घूमें। उन्होंने एकनाथ सोलकर को इशारा किया कि वे 'शार्ट लेग' की पोजीशन पर आ जाएं। इसके बाद चन्द्रशेखर दौड़े। उन्होंने बड़े खतरनाक ढंग से गेंद को स्पिन किया। बैट्समैन रक्षा के लिए आगे की तरफ गया। गेंद ने बाउन्स किया और जमीन से कुछ इंच ऊपर गेंद को कैच कर लिया गया।

इस बार उसके मन में जरा भी संदेह नहीं था कि वह सही हैं। उन्होंने अपील की। इसके साथ ही सोलकर ने अपील की।

अम्पायर के विचार अलग थे। अम्पायर ने कहा कि "गेंद पैड छूकर आई है, बैट नहीं। इसलिए अपील नामंजूर की जाती है।"

चन्द्रशेखर क्रोध से कांप रहे थे। फिर भी उन्होंने गुस्से पर काबू किया।

वे फिर मुड़े, गेंद फेंकने के लिए! गेंद बड़ी, तेजी से आई। बैट्समैन उसे रोक नहीं सका और मिडिल स्टम्प गिर गया।

चन्द्रशेखर ने फिर अपील की।

"तुम अपील क्यों कर रहे हो? क्या देख नहीं सकते कि खिलाड़ी 'बोल्ड' हो गया है?" अम्पायर ने उत्तर दिया।

चन्द्रशेखर ने एक क्षण के लिए अम्पायर की तरफ फिर देखा और व्यंग्यपूर्वक मुस्कुराते हुए कहा, "मैं जानता हूं कि खिलाड़ी बोल्ड हो गया है। लेकिन क्या वह आउट हो गया है?"

मास्टर स्ट्रोक

सुनील गावस्कर को कौन नहीं जानता? सब लोग उन्हें *लिटिल मास्टर* कहते हैं।

जब तक उन्होंने क्रिकेट से संन्यास नहीं लिया, वे क्रिकेट पर छाए रहे। वे उत्कृष्ट कोटि के 'बैट्समैन' थे। वे ठीक समय गेंद पर प्रहार करते थे। उनके 'स्ट्रोक' सहज होते थे। गेंद कैसी भी हो वे उसे खेल लेते थे। वे डॉन ब्रेडमैन की कोटि के खिलाड़ी हैं।

गावस्कर ने अनेक रिकार्ड बनाए। ये सब क्रिकेट फील्ड पर ही नहीं बल्कि एक ऐसा भी रिकार्ड है जो उनके साहस की गाथा है। जनवरी 1993 में, मुंबई में दंगे हो गए।

उन्मादी भीड़ जिन लोगों को मारना चाहती थी उन दोनों के बीच वे खड़े हो गए। गावस्कर के पास कोई हथियार नहीं था। भीड़ को पीछे रखने के लिए वे दोनों पक्षों के बीच खड़े हो गए। वे आक्रामक भीड़ को घूर कर देखते रहे। दंगाईयों के पास डिब्बों में पेट्रोल, मिट्टी का तेल, जलती मशालें, लाठियां और लोहे की छड़ें थी। भीड़ उन्हें देखकर पीछे हट गयी। गावस्कर की आंखों से गुस्सा बरस रहा था, खून उतर आया था। उन्होंने भीड़ को चुनौती दी। लिटिल मास्टर ने रक्षक के रूप में अभूतपूर्व रिकार्ड स्थापित कर दिया था। इसके अलावा अन्य कई मौकों पर भी इस तरह के रिकार्ड गावस्कर ने स्थापित किए।

वर्ष 1988-89 के क्रिकेट सीजन में भी ऐसा ही हुआ था। गावस्कर एक 'बेनिफिट' मैच खेलने अन्य कई प्रमुख खिलाड़ियों के साथ जोधपुर आए। मैच के टिकट हाथों हाथ बिक गए। यह दुर्लभ अवसर था। (जोधपुर ऐसी जगह नहीं है जहां बहुधा (टेस्ट या प्रमुख) मैच खेले जाते हों। अधिकांश ऐसे मैचों को लोग टेलीविजन पर देख लेते हैं। लोग खिलाड़ियों को देखने के लिये बेताब थे।

खेलने के स्थान पर बड़ी भीड़ थी।

जब वे मैदान में खेलने उतरे तब नर-नारी और बच्चे सभी उस समय गला फाड़कर हर्षोल्लास कर खिलाड़ियों का स्वागत करने लगे। बहुत से बच्चे खिलाड़ियों का ऑटोग्राफ (हस्ताक्षर) लेने उनके पास पहुंच गए।



आयोजनकर्ताओं ने उन्हें पीछे हटा दिया।

"ओह, नहीं पिच पर मत दौड़ो," एक खिलाड़ी ने हलके से एक किशोर को धक्का देकर रोक दिया। वह लड़का शार्टकट (छोटे रास्ते) से सुनील गावस्कर के पास पहुंचना चाहता था।

बेमन से बच्चे अपने स्थान पर वापस लौट गए। जब भी खेल रूकता, बच्चे हस्ताक्षर लेने के लिए खिलाड़ियों को घेर लेते। उनमें एक छोटी लड़की भी थी। उसने ऑटोग्राफ पुस्तिका कैसे कर हाथ में पकड़ रखी थी। उसकी मां सविता बी.पी. सिंह, बच्ची पर ध्यान रखे एक किनारे खड़ी थीं।

छोटी लड़की सुनील गावस्कर के दस्तखत लेने के लिए पुस्तिका के साथ उन पर नजर गड़ाए थी। लेकिन वह उनके पास नहीं पहुंच पा रही थी। हर बार उससे बड़े और लम्बे लड़के अपनी पुस्तिका बढ़ा देते थे। लड़की रह जाती थी।

बच्ची दिन भर प्रयत्न करती रही लेकिन विफल रही।

उसने दुख से अपने ओठ दबा लिए। उसने अंतिम प्रयास किया लेकिन विफल रही। अन्य लोगों ने उसे पीछे धकेल दिया।

छोटी बच्ची समझ गयी कि उसे ऑटोग्राफ मिलने का कोई अवसर मिलने वाला नहीं है।

उसकी आंखों में आंसू भर गए और वह अपनी मां की बाहों में सुबकने लगी।

"बेटी. . .रोओ मत. . .तुमने पूरी कोशिश की. . ."

मां ने बच्ची को सांत्वना देते हुए अपने और पास खींच लिया और सीधे बाहर के दरवाजे की ओर बढ़ गयीं।

बच्ची ने कुछ नहीं कहा।

वह चुपचाप, ऑटोग्राफ बुक कसकर अपने हाथ में पकड़े चलती गयी थी। उस 'बुक' में कुछ अन्य खिलाड़ियों के हस्ताक्षर थे। उसकी इच्छा थी कि अपने हीरो, गावस्कर के हस्ताक्षर और करा ले।

वह अपनी मां की उंगली पकड़े थी। दोनों धीरे-धीरे चलते हुए स्टेडियम के बाहर चले गए।

मोड़ पर एक कार धीरे से उनके पास आकर रुकी। गावस्कर मुस्कुराते हुए और बहुत धीरे से लड़की से बोले, "तुम मेरे ऑटोग्राफ चाहती थीं?"

उन्होंने देख लिया था कि छोटी बच्ची उनके हस्ताक्षर लेने के लिए काफी प्रयास कर रही थी। एक क्षण के लिए गावस्कर ने उसकी आंखों में देखा। उनमें आशा, भरी हुई थी।

गावस्कर को देखते ही उसका चेहरा खिल उठा।

उसने जल्दी से अपनी 'ऑटोग्राफ बुक' गावस्कर की ओर बढ़ा दिया। उसने वह कलम भी दे दी जो ऑटोग्राफ लेने के लिए वह लायी थी। गावस्कर ने दस्तख्त कर दिए। फिर उसकी पीठ थपथपाई और बड़े प्यार से ऑटोग्राफ बुक और वह कलम वापस कर दी जो बच्ची ने दी थी। गावस्कर की आंखों में उस समय खुशी की चमक आ गयी जब बच्ची ने कहा, "थैंक यू वेरी मच, सर (धन्यवाद, सर)।" उन्होंने थोड़ा-सा अपना सिर झुकाया, मुस्कुराए और आगे बढ़ गए। लड़की खड़ी हो गयी और उसने कृतज्ञतापूर्वक हाथ हिलाकर विदाई दी।

"मुझे मिल गए, मुझे मिल गए।" यह कहते हुए वह खुशी से नाचने लगी। इस बीच उसकी मां बच्ची को नाचते हुए देख मन में प्रसन्नता से हर्षित होती रही।

बाद में बच्ची की मां ने एक राष्ट्रीय समाचार पत्र को बताया कि "मैं नहीं समझती कि उन्हें (गावस्कर) यह छोटी-सी घटना याद होगी लेकिन उनके इस प्रेम और स्नेह ने मेरी बच्ची के मनोबल को पुनः स्थापित किया और उसके सपने को साकार कर दिया।"

भूतों के भय पर विजय

कालाडुंगी के जिस बंगले में कार्बेट्स परिवार रहता था वह जंगल के बीचोंबीच था। चारों तरफ ऊंचे पेड़ थे। ऐसा लगता था कि पेड़ों की फुनगियां आसमान छू रही हैं। जंगल इतना घना था कि सूरज की किरणें जमीन तक नहीं पहुंच पाती थीं। धूप केवल बंगले से लगे घास के मैदान तक पहुंचती। घास का मैदान हरा-भरा था और बहुत साफ-सुथरा रखा जाता था। उस से बंगला सुशोभित हो उठता था।

वहां पक्षियों का कलरव सुन्दर संगीत लगता था। बन्दर खो-खो करते घूमते थे। शेर दहाड़ते थे। भेड़िए आवाज करते थे। तोते अपनी बोली बोलते थे। इनकी आवाजों के साथ अन्य पशु-पक्षियों की भी आवाजें मिल जाती थीं।

बच्चों के लिए खास तौर पर जिम कार्बेट के लिए ये आवाजें परिचित आवाजें थीं। जंगल की पगडंडियों पर ये पशु दौड़ते थे। कुछ एक पेड़ की एक डाल से दूसरी डाल पर कूद जाते। गिलहरियां भी दौड़ती रहतीं। कभी-कभी वे खड़े होकर और छोटी-छोटी जलधाराओं को ढलान की तरफ बहती हुई देखते। वे बन्दरों को पेड़ों की डालों पर बैठे देखते। कभी-कभी ये बंदर कलाबाजियां खाते देखे जाते तो कभी आपस में बनावटी लड़ाइयां भी लड़ते।

दिन भर इन्हीं तमाशों में बीत जाता।

रात को बच्चों के लिए दूसरा मनोरंजन होता। बड़े लोग कहानियां सुनाते। जो लोग कहानियां सुनाते उनमें कैप्टन डंसे भी थे। वे पूरे परिवार के मित्र थे और बहुधा घर पर आते जाते थे।

उनके घर पर आने से वातावरण जीवंत हो जाता था। उनके पास कहानियों का खजाना था। उसमें भूत, प्रेत की कहानियों का भी भंडार था। वह इनमें से अनेक कहानियां बच्चों को सुनाते थे। सभी बच्चे इकट्ठे होकर बैठ

जाते। भूतों की कहानियों से भय भी उत्पन्न होता था लेकिन बच्चे फिर भी कहानी सुनते क्योंकि उनमें कौतूहल होता था।

एक दिन कैप्टन डंसे ने बंसी की कहानी सुनाई। यह कहानी उन आत्माओं की थी जो जंगल में रहती थीं। उन्होंने आत्माओं की दुष्टता के बारे में बताया। कैप्टन डंसे ने आत्माओं की आवाज बनाकर बताई। अगर कोई यह पता लगाने बाहर जाता कि वे क्यों रो रही है तो वे उस पर कूद पड़ती और उस आदमी को मार डालतीं। उन्होंने कहा बंसी भूतनियां खतरनाक होती है। उन्होंने बच्चों से कहा कि "कभी कोई डरावनी आवाज सुनाई दे तो बाहर नहीं जाना चाहिए। क्या पता कोई आवाज किसी भूतनी की ही हो।"

जिम शेरों की परवाह नहीं करते। वे हाथियों से भी नहीं डरते थे। वे जंगल में रहने वाले किसी जानवर से भयभीत नहीं होते। वास्तव में उन्हें उन जानवरों को देखना अच्छा लगता था। वे उनकी आवाजों की नकल करते थे। जब वे जंगल में घूमने जाते तो खूब आनन्द लेते थे। अपने आपको जंगल में पाते तो ज्यादा-से-ज्यादा वन जीवन से अपने को परिचित करने का प्रयास करते।

एक दिन वे जंगल में अंदर बहुत दूर तक घूमते चले गए। शाम जब ढलने लगी तब उन्हें आभास हुआ कि वे तो जंगल के अंदर ऐसी जगह पहुंच गए हैं जो घर से बहुत दूर है। उन्होंने तेजी से लौटना शुरू किया। वे पगडंडियों पर भाग रहे थे। सूखी पत्तियों पर चलने की आवाज से एक तरह का संगीत बजने लगा। घने जंगल से उन्होंने सूरज को डूबते हुए देखा।

यकायक अंधेरा छाने लगा। फिर भी जिम चलते ही रहे क्योंकि उनको घर का रास्ता मालूम था।

वे घर के पास पहुंच ही रहे थे कि उन्होंने एक अजीब-सी आवाज सुनी। इस तरह की ध्वनि उन्होंने पहले कभी नहीं सुनी थी। वे मन-ही-मन यह सोचते हुए कि यह आवाज किसकी हो सकती है घर की ओर दौड़ने लगे। आवाज कभी तेज हो जाती तो कभी कम हो जाती। जिम को यह आवाज किसी आदमी के कराहने जैसी लगी। फिर उन्हें कप्तान डंसे की भूतनी वाली बात याद आयी।

वे भयभीत हो गए। अगर प्रेतात्माओं ने उन्हें देख लिया तो वे उन्हें पकड़ लेंगी, खा जाएंगी। जिम बड़ी तेज रफ्तार से भागे।

एक कोने पर वे मुड़े। वे हांफ रहे थे। वे बंगले का छोटा दरवाजा

पार करके, सीढ़ियों से ऊपर चढ़े। वह बंगले के छोटे बरामदे तक जाता था। वहां पहुंचकर वे एक खंभा पकड़कर खड़े हो गए ताकि उनकी सांस सामान्य हो जाए।

थोड़ी देर बाद उन्हें राहत मिली।

राहत मिलने के बाद जब वे सामान्य हो गए तो उनकी उत्सुकता जागी कि वे बाहर जाएं और देखें कि वह आवाज किसकी थी। वे तुरन्त बाहर नहीं गए। उन्हें प्रेतात्माओं का डर था। जल्दी ही उन्होंने अपने भय पर काबू पाया और धीरे-धीरे बाहर आए। वे बिना आहट किए चल रहे थे। उन्होंने अनुभव किया कि हवा उनकी गरदन स्पर्श कर रही है। हवा का यह स्पर्श आवश्यकता से अधिक था। जिम ने ऊपर देखा। आसमान में अनगिनत तारे चमक रहे थे। आवाज के नजदीक पहुंचते हुए उन्होंने प्रकृति का आनन्द लिया। अब वे आवाज के पास पहुंच गए थे। आवाज कभी तेज तो कभी मन्द हो जाती थी। आवाज बहुत कुछ मानव ध्वनि जैसी लग रही थी। वह आवाज प्रेतात्मा भी कर सकती थी।

फिर भी जिम चलते ही गए। वे अब वहां पहुंच गए जिस जगह से आवाज आ रही थी। उन्होंने चारों तरफ देखा। कोई दुष्ट आत्मा उन्हें दिखाई नहीं पड़ी। उन्होंने जो कुछ देखा वह थीं एक पेड़ की हिलती डालें। वे हवा में जोर से नाच रही थीं। अक्सर वे आपस में रगड़ जाती थीं, वे जब भी आपस में रगड़तीं तो उनसे अजीब-सी आवाज निकलतीं। जिम को उस समय बड़ी प्रसन्नता हुई जब उन्होंने अनुभव किया कि वह आवाजें पेड़ की डालियों की रगड़ से आ रही थी। वहां न कोई भूत था, न भूतनी जो उन्हें खा जाती।

जिम कार्बेट को भूत और भूतनियों का कोई डर नहीं रहा। वे भूतों के डर से सदा के लिए मुक्त हो गए।

सुगंधित पुष्प

गुरुनानक के भक्त जानते थे कि वे सुगंधित पुष्प थे। गुरुनानक के मुलतान आने की खबर से उनके भक्तों में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। उन्होंने उनका बहुत आदर-सत्कार किया। उनके ठहरने की व्यवस्था की गई। भक्त उन्हें साक्षात भगवान मानते थे। गुरुनानक देव जी में दिव्यता थी। लोगों के मन में जिस किसी प्रकार का भय होता था वह गुरुनानक देव की उपस्थिति में दूर हो जाता था। वे सार्वभौमिक प्रेम और बंधुत्व का प्रचार करते थे। वे अपने उपदेशों में सबको घृणा तथा धार्मिक भेदभाव का त्याग करने की बात कहते थे।

वे बार-बार कहते थे कि भगवान सभी धर्मों के लिए हैं। मानवीय आदर्श सभी धर्मों में समान हैं। विभिन्न धर्म ईश्वर के पास पहुंचने के अलग-अलग मार्ग हैं।

गुरूनानक देव अपने विचारों को बड़े प्रभावी ढंग से लोगों के सामने रखते थे। इससे मुलतान के फकीर बड़े नाराज थे, मुलतान में उनकी संख्या ज्यादा थी।

फकीरों की बैठक हुई जिसमें नानकदेव के मुलतान प्रवास पर विचार किया जाना था।

फकीरों के एक नेता ने कहा कि "अगर वे यहां लम्बे समय तक रहते हैं तो हमारे अनुयायियों को अपनी ओर कर लेंगे। हमारा एक भी अनुयायी नहीं बचेगा। नानक जी धार्मिक सहिष्णुता का प्रचार करते हैं। वे चाहते हैं कि सब धर्मों का सम्मान किया जाए। हमें उनको बता देना है कि मुलतान में ऐसे लोगों के लिए कोई स्थान नहीं है। हमें उन्हें यहां से जाने के लिए मजबूर कर देना है।"

एक फकीर जिसने गुरुनानक देव के उपदेश सुने थे कहा, "सच तो यह



है कि वे महापुरुष लगते हैं-भगवान के अवतार।"

इस पर फकीरों के सरदार ने कहा, "मैं नहीं जानता। न मुझे उनकी परवाह है। वह हम लोगों को भगा देगा। जनता पर हमारा जो प्रभाव है वह समाप्त हो जाएगा। अब कुछ करने का समय है।"

"आप ठीक कहते हैं।" सभी फकीरों ने एक सुर से कहा। उनमें से केवल एक फकीर असहमत था जिसने गुरुनानक देव का प्रवचन सुना था।

"अच्छा। हमें बाहर से आए व्यक्ति को दूध का एक प्याला भेजना है जो ऊपर तक लबालब भरा हो।" . . .यह कह फकीरों का नेता थोड़ा रुका।

अधिकांश फकीरों ने इशारा नहीं समझा। वे एक-दूसरे का मुंह देखते रहे। एक ने कहा कि "दूध से भरे प्याले का गुरूनानक के मुलतान छोड़ने से क्या संबंध है?"

फकीरों का नेता मुस्कुराया। बोला, "मैं आपको बताता हूं। मैं समझता हूं कि नानक को संदेश मिल जाएगा। वह समझ जाएगा कि मुलतान में पहले से ही पर्याप्त संख्या में धार्मिक प्रचारक मौजूद हैं। उनको एक और प्रचारक की जरूरत नहीं है। समझ गए आप लोग?"

फकीरों ने इस बात पर सहमति प्रकट की। उन्होंने कहा कि यह अच्छा रास्ता है। निर्णय के अनुसार नानकदेव जी के पास एक व्यक्ति दूध का प्याला लेकर गया। उस आदमी ने दूध भरा प्याला गुरुनानक के सामने रख दिया। उसने नम्रता से झुककर प्रणाम किया। गुरु मुस्कुराए और उन्होंने उस व्यक्ति से बैठने को कहा।

उस व्यक्ति ने कहा, "गुरुजी! मुलतान के फकीरों ने मुझसे आपके पास यह दूध पहुंचाने के लिए कहा है।"

"फकीरों ने?" गुरुनानक ने प्रश्न किया।

"जी! महाराज!"

"उनको मेरी तरफ से धन्यवाद देना। इस सौजन्यता के लिए शुक्रिया कहना। उनकी बड़ी दया है। . . .लेकिन मैं दूध नहीं पिऊंगा। मैं समझ गया कि वे क्या कहना चाहते हैं। मैं इसका जवाब उनको दे दूंगा।" फिर गुरुजी चुप हो गए। उन्होंने चमेली का एक फूल उठा लिया और बड़ी सावधानी से उसे दूध की सतह पर रख दिया। वह उस पर तैरने लगा। दूध भरे प्याले में सतह पर फूल रखने की जगह थी।

"यह प्याला अपने मालिकों के पास वापस ले जाओ।

प्याला उन्हें देना। लेकिन सावधान रहना। मैंने उस पर चमेली का फूल रख दिया है। यह दूध की सतह पर ही रहे। याद रखना इस दूध में फूल की खुशबू बनी रहे। फूल दूध की सतह पर तैर रहा है। यह चमेली के फूल की सुगंध है। इसमें दिव्यता है।" गुरूनानक ने बड़े शान्त भाव से कहा।

"जैसी आपकी आज्ञा महाराज!" दूध लाने वाले व्यक्ति ने कहा।

वह उनके सामने झुका। फिर उसने सावधानीपूर्वक दूध का प्याला उठाया। वह धीरे-धीरे चलकर उस जगह पहुंचा जहां फकीर उसका इन्तजार कर रहे थे।

फकीरों के नेता ने क्रोध से पूछा कि "दूध का प्याला वापस क्यों लाए?"

"गुरुनानक देव ने कहा कि यह प्याला वापस अपने स्वामी के पास ले जाओ," उस व्यक्ति ने कहा। "उन्होंने इस में दिव्य सुगंध फैला दी है। यह उपहार स्वरूप है।" प्याला लाने वाले व्यक्ति ने प्याला फकीरों के और पास कर दिया ताकि फकीर उसे देख सकें।

फकीर अपनी-अपनी गरदन प्याले तक ले गए और सुगंध लेने लगे। प्याला लेकर वह व्यक्ति अन्य फकीरों के पास गया। प्रत्येक ने चमेली के फूल को देखा। वह दूध की सतह पर तैर रहा था।

"इसका क्या मतलब है?" फकीरों का नेता भ्रांत दिखलाई पड़ रहा था। ज्यादातर फकीर उसका अर्थ नहीं समझ पा रहे थे।

तब वह फकीर बोला जिसने पहले नानक का प्रवचन सुना था और उनके पक्ष में बोला था। उसने कहा कि देखिए "पुष्प दूध की सतह पर तैर रहा है। प्याला पूरा भरा था लेकिन उसके ऊपर भी फूल तैर रहा है।"

"दूध का प्याला भेजकर सूक्ष्म संकेत भेजा गया था कि मुलतान में पर्याप्त फकीर हैं। मुलतान को और फकीरों की जरूरत नहीं है।" फकीरों के नेता ने रोषपूर्वक प्रश्न पूछा।

"ओ, मित्रो। संदेश स्पष्ट है मुलतान फकीरों से भरा पड़ा है। फकीर दूध हैं। गुरुनानक चमेली का फूल हैं, खुशबूदार। वे दूध की सतह पर तैर सकते हैं।" फकीर समझ गए संदेश को। सब एक दूसरे की ओर देखने लगे। उन्होंने स्वीकार किया, "कितने महान पुरुष हैं गुरुनानक देव जी। हमें उस सुगंध की जरूरत है जो गुरुजी मुलतान को दे रहे हैं।

दरिद्र नारायण

खेतड़ी के लोग युवा संन्यासी को देखने के लिए उमड़ पड़े थे। वे समूहों में आ रहे थे। वे सुबह, दोपहर, शाम को आ रहे थे। रात हो जाने पर वे वहीं रह जाते। सुबह तक वहीं रहता। वे युवा संन्यासी विवेकानन्द का प्रवचन सुनते। वे क्या कहते हैं?

यह क्रम तीन दिनों और तीन रातों तक चला। किसी ने भी स्वामी जी की आवश्यकताओं की तरफ ध्यान ही नहीं दिया। तीन दिन तक उन्होंने न कुछ खाया न पिया।

लेकिन स्वामीजी ने रुष्टता नहीं प्रकट की।

आखिरकार जब स्वामीजी अकेले थे तब एक मोची उनके पास आया और उनको दंडवत प्रणाम किया।

संन्यासी ने उसे उठाया। मोची ने कहा, "स्वामी आपने तीन दिनों से कुछ भी खाया-पीया नहीं है। इस बीच आपने एक गिलास जल तक भी नहीं पिया है। आपके भक्तों ने आपकी इन आवश्यकताओं की तरफ ध्यान ही नहीं दिया। यह बड़ी अजीब और आश्चर्य की बात है।"

स्वामी विवेकानन्द मुस्कुराए। फिर उन्होंने मोची से पूछा, "क्या आप मुझे कुछ खाने को दे सकते हैं?"

मोची कुछ हिचकिचाया। वह अस्पृश्य था। वह उन्हें भोजन देने की धृष्टता कैसे कर सकता था।

स्वामीजी ने समझ लिया कि निर्धन मोची को कोई बात सता रही है।

उन्होंने मोची से फिर कहा, "आप मुझे खाने को दे सकते हैं?"

मोची ने उत्तर दिया, "मैं कुछ आटा दाल ला देता हूं। आप स्वयं बना लें। मैं आपको अपने यहां का तैयार भोजन तो दे नहीं सकता। मैं मोची हूं।"



"लेकिन प्रिय मित्र मैं खाना बना नहीं सकता। मैं शपथ से बंधा हूं। मैं संन्यास धर्म का पालन करता हूं। जब तक मैं शपथ पर चल रहा हूं तब तक अग्नि को स्पर्श नहीं कर सकता।" स्वामी विवेकानन्द ने मोची से कहा।

मोची बेचारे की समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर वह करे तो क्या करे। उसकी अक्ल गुम थी। वह जानता था कि गांव के लोगों को अगर पता चल गया कि मैंने स्वामी जी को भोजन कराया है तो सारा खेतड़ी उससे नाराज हो जाएगा। अगर इस कार्य का महाराजा को पता लग गया तो हो सकता है महाराजा उसे इस बात के लिए कारागार में डाल दें।

मोची ने स्वामीजी से प्रार्थना की और बताया कि उसे किस खतरे का सामना करना पड़ सकता है। "महाराजा को अगर पता लग गया कि मैंने आपको अपने घर का भोजन कराया है तो वे मुझे सजा दे सकते हैं। स्वामीजी महाराज मेरी कठिनाई समझें।"

"मैं जानता हूं मेरे भाई! लेकिन तुम डरो मत। मैं किसी को नहीं बताऊंगा। अगर महाराजा जान भी गए तो मैं उनसे कहूंगा कि मैंने तुमसे भोजन के लिए कहा था। ठीक है?" स्वामी विवेकानन्द ने नरम स्वर में कहा। वे फिर बोले, "कृपया जल्दी करो। मेरे लिए कुछ रोटियां ले आओ। मुझे बड़ी भूख लगी है। जल्दी करो मेरे भाई। मैं घर के बने फुलकों की प्रतीक्षा में हूं।" स्वामीजी ने बड़े आग्रह से कहा।

मोची अपने घर की ओर भागा। विवेकानन्द जी निर्धन मोची की भावनाओं से बड़े प्रभावित हुए थे। शहर के किसी व्यक्ति ने उनकी आवश्यकताओं की ओर ध्यान नहीं दिया था। उनको भगवान पर पूरा भरोसा था कोई-न-कोई उनके लिए खाने को अवश्य लाएगा। उन्होंने मोची में भगवान के दर्शन किए। उन्होंने दरिद्रनारायण में भगवान को देखा जो मोची के रूप में आया था। वे अपने आपको आश्वस्त करना चाहते थे कि वे जांत-पांत का भेदभाव नहीं मानते। वे मानव मात्र से प्रेम करते हैं।

स्वामी विवेकानन्द इसी तरह सोच रहे थे। जब मोची रोटी लेकर पहुंचा। वह उनके पास हिचकिचाता हुआ आया। उसके मन में अब भी हिचकिचाहट थी। वह उस समय भी सोच रहा था कि स्वामीजी के लिए रोटी लाकर उसने ठीक काम किया है या नहीं?

"ओह! तुम आ गए। रोटी तो लाए हो न?" स्वामीजो भोजन पाने के लिए तड़प रहे थे।

"ये रही रोटी स्वामीजी। यह रुखा-सूखा निर्धन की तरफ से है। एक मोची की तरफ से। लेकिन . . .लेकिन. . ." वह मोची आगे नहीं बोल सका। उसका गला रुंध गया था।

"ओह यह रोटियां बहुत स्वादिष्ट हैं।" स्वामीजी ने कुछ कौर खाए। फिर वे मोची से बोले, "धन्यवाद मेरे दोस्त, धन्यवाद।" स्वामीजी की आंखों में आंसू भर आए।

मोची खड़ा हुआ था और स्वामीजी रोटियां खा रहे थे।

बाद में स्वामीजी ने अपना हाथ बढ़ाया। मोची को स्पर्श किया। मोची के सिर पर हाथ फेरा और भरे गले से कहा। "तुम जैसे उदार हृदय के हजारों लोग छोटी-छोटी झोंपड़ियों में रहते हैं और हम उन्हें अछूत कहकर उनसे घृणा करते हैं।"

मोची स्वामीजी के चरणों में गिर पड़ा और उसने उन्हें दण्डवत प्रणाम किया।

मोची चला गया। वह प्रसन्न था। उसने इतने बड़े आदमी की मेजबानी की थी। स्वामी विवेकानन्द उसे तब तक देखते रहे जब तक वह उनकी आंखों से ओझल नहीं हो गया। फिर उन्होंने अनुभव किया कि उनके हृदय में एक अद्‌भुत शान्ति छा गयी। उन्हें गरीब आदमी के अतिथि सत्कार की छोटी-सी झलक मिल गयी थी। उनमें बड़ी मानवीयता थी। छोटे और निर्धन लोगों में स्वामीजी ने भगवान के दर्शन किए थे। उन्होंने छोटे लोगों और निर्धनों की सेवा में ही मुक्ति का मार्ग देखा।

जीता-जागता उपहार

आसपास की वायु शीतल और प्रिय लग रही थी। परमाणु शक्ति आयोग के अध्यक्ष डाक्टर होमी भाभा अपनी कार में बैठे थे और आसपास के दृश्य का आनन्द ले रहे थे। कार पेडर रोड पर चली जा रही थी। सहसा उन्होंने किसी कठोर वस्तु पर कई कुल्हाड़ियों के प्रहार की आवाज सुनी। उन्होंने ड्राइवर को कार धीमी करने का इशारा किया। बाहर झांककर, उन्होंने देखा कुछ लोग एक वृक्ष की डालें काट रहे हैं।

भाभा ने ड्राइवर को कार रोकने का संकेत किया। भाभा कार से उतरे। वे उन मजदूरों के पास गए और पूछा, "तुम लोग इस पेड़ को क्यों काट रहे हो? तुम्हें पता है सारे पौधे बच नहीं पाते? क्या तुम जानते हो कि पेड़ हमारी कितनी सेवा करते हैं? पेड़ मत काटो।"

मजदूरों के दल के नेता ने भाभा को घूरकर देखा। फिर बोला, "सर, हमसे कहा गया है, हम इस वृक्ष को काट दें। यहां पर सड़क चौड़ी की जाएगी। यह पेड़ रास्ते में अड़चन डाल रहा है। म्युनिसपिल इंजीनियर ने पेड़ काटने का आर्डर दिया है।"

"जरा रुको! मैं अभी किसी को भेजता हूं जो इस पेड़ को हटा देगा।" . . .भाभा ने मजदूरों से कहा कि बस एक घंटे के लिए रुक जाओ।

इसके बाद भाभा अपनी कार में बैठ गए। उन्होंने ड्राइवर से कहा "जल्दी आफिस चलो।" जैसे ही वे आफिस पहुंचे उन्होंने वैद्य को बुलाया।

"मार्निंग सर!" वैद्य ने अपने वरिष्ठ अधिकारी को विश किया।

"मार्निंग, वैद्य, एक बात बताओ। अगर कोई वृक्ष यहां खड़ा हो तो क्या हम उसे दूसरी जगह ले जाकर लगा सकते हैं।" "लेकिन सर मुझे बताएं पेड़ कहां लगा है और किस जगह लगाना है। मैं समझता हूं, हमें सफलता मिल सकती है।"

"पेडर रोड जाओ। वहां तुम्हें कुछ मजदूर खड़े मिलेंगे। उनसे कहा गया है कि पेड़ काट डालो। वे डालें काट रहे थे। मैं उधर से गुजर रहा था तब मैंने उन्हें देखा। मैंने उनसे काम रोकने के लिए कहा।" भाभा ने कहा, "मैं किसी को भेजता हूं जो पेड़ हटा देगा। वैद्य अगर तुम पेड़ को बचा लो तो मुझे बड़ी खुशी होगी।"

"मैं अभी जाता हूं, सर।" वैद्य ने कहा।

जब वैद्य पहुंचे तो मजदूर पेड़ को घेरे बैठे थे। और आपस में बातें कर रहे थे कि कब तक प्रतीक्षा करें। तभी उन्होंने देखा कि वैद्य वहां पहुंच रहे हैं। वैद्य पेड़ के चारों ओर घूमे और उन्होंने पेड़ का निरीक्षण किया। वह वर्षाजनित पेड़ था, जो ऑस्ट्रेलिया में होता था। वैद्य ने देखा कि पेड़ का तना कुल्हाड़ियों के काफी बड़े-बड़े प्रहारों से कई जगह कट गया था। यह गड्ढे मजदूरों की कुल्हाड़ियों के प्रहार से हो गए थे।

"ये लो 25 रुपए। मैं समझता हूं दिनभर के काम के बाद तुम्हें इतने ही पैसे मिलते।" रुपए देकर वैद्य ने मजदूरों को विदा किया।

फिर उन्होंने क्रेन वालों को बुलवाया। अपनी संस्था से भी उन्होंने कुछ लोगों को बुलाया।

वैद्य पेड़ के चारों तरफ घूमें और पेड़ के प्रतिरोपण की योजना बनाने लगे। वे समझते थे कि जो वे सोच रहे हैं, वह हो सकता है। वे प्रतिरोपण कर सकते हैं। बेशक, वे निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि पेड़ बच ही जाएगा। लेकिन पेड़ के बच जाने की संभावना थी।

परमाणु शक्ति केन्द्र से लगभग एक दर्जन श्रमिक अपनी कुल्हाड़ियों आदि के साथ थोड़ी देर में वहां आ गए। वैद्य ने कहा कि "पेड़ के चारों ओर खोद डालो।" श्रमिकों ने ऐसा ही किया। फिर उन्होंने एक गड्ढा खोदा। वे खोदते गए। यह गड्ढा पेड़ के चारों ओर लगभग पांच फीट का था। अब पेड़ की जड़ें देखी जा सकती थीं।

वैद्य ने श्रमिकों को गाइड करते हुए उनसे कहा, "सावधान रहो। जड़ों को कोई भी नुकसान न पहुंचे। . . ." गड्ढा अब और गहरा हो गया था। कोई पन्द्रह फुट गहराई हो गयी थी।

"बढ़िया", वैद्य ने कहा।

इसके बाद वह उस स्थान पर गए जो पेड़ से करीब साठ फुट दूर था।

यह वह स्थान था जहां पेड़ का प्रतिरोपण किया जाना था। यह स्थान वैद्य ने चुना था। वैद्य श्रमिकों को वहां ले गए और उनसे वहां गड्ढा खोदने को कहा।

जब वह गड्ढा तैयार हो गया तो वैद्य कार्रवाई के लिए तैयार हो गए।

क्रेन को पेड़ के और पास ले आया गया। उसके दांत और आगे किए गए। उसके हुकों को शाखाओं से जोड़ दिया गया। इन हुकों द्वारा हल्के से पेड़ को ऊपर उठा लिया गया। पेड़ कुछ कांपा। नीचे की जड़ें जमीन में ही गड़ी रहना चाहती थीं लेकिन अब उनमें ज्यादा ताकत नहीं थी। इसका कारण यह था कि उनका अधिकतर हिस्सा बाहर खुले में आ गया था। धीरे-धीरे पेड़ ऊपर की तरफ उठता गया और ऊपर उठने पर सारी जड़ों समेत पेड़ जमीन से उखड़ गया। अब पेड़ अधर में लटक रहा था। सारी जड़ें समूल अधर में लटक गयी थीं।

क्रेन पेड़ को हवा में लटकाए थी। क्रेन से पेड़ उस स्थान पर ले जाया गया जहां उसे लगाना था। वह ठीक वही जगह थी जहां नया गड्ढा बनाया गया था। धीरे-धीरे क्रेन ने पेड़ को नीचे रखना शुरू किया। पेड़ के नीचे आ जाने पर श्रमिकों ने उसे मिट्टी से ढकना शुरू कर दिया। जब वैद्य ने देख लिया कि पेड़ ने मजबूती से भूमि को पकड़ लिया है। तो वे खुश हो गए। पेड़ को चारों ओर अच्छी तरह पानी से सींच दिया गया।

इसके बाद वे भाभा के पास गए। उन्होंने बताया कि, "सर पेड़, दूसरी जगह लगा दिया गया है, जैसा आप चाहते थे।"

"धन्यवाद, वैद्य! धन्यवाद! मुझे लग रहा है कि वह चीज जो मेरे बहुत करीब थी मरने से बचा ली गयी है। आशा करता हूं कि पेड़ जीवित रहेगा।" भाभा ने उत्तर दिया।

"मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता, सर! लेकिन संभावना तो अवश्य है। इसमें संदेह नहीं" वैद्य ने कहा।

"हम जितना कुछ कर सकते थे, वह किया। शेष तो भगवान के हाथ में है।" भाभा ने मुस्कुराते हुए कहा।

आज भी वह पेड़ वहीं खड़ा है जहां उसका प्रतिरोपण किया गया था। यह उस व्यक्ति का उपहार है जो न केवल महान वैज्ञानिक था बल्कि महान प्रकृति प्रेमी भी था।

वापसी

मानव जीवन एक बार ही मिलता है। अपने स्वभाव के अनुसार ही यह जीवन जीना चाहिए। परमेश्वर राव अन्ततः दुविधा से मुक्त हो गए। उन्होंने 1977 में अमेरिका की पेनसिलवेनिया राज्य के विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की डिग्री प्राप्त की। उनके प्रोफेसर ने उन्हें विश्वविद्यालय में ही सहायक प्रोफेसर की नौकरी का आफर दिया। वेतन तीस हजार डालर प्रतिवर्ष था। यह लाभप्रद प्रस्ताव था।

फिर भी राव ने प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अंतरात्मा के निर्देश पर चलना ही उचित समझा। वे भारत वापस लौट आए।

"अब तुम्हारी क्या योजना है?" उनके पिता ने उनसे पूछा।

राव ने अपने जीवन का मार्ग स्वयं निर्धारित किया था। अपनी स्कूली शिक्षा समाप्त करने के बाद वह अपने गांव डिमली वापस लौटना चाहते थे। लेकिन आगे की शिक्षा के लिए, पहले भारत में और बाद में अमेरिका चले गए। बीच में जो थोड़ा समय मिला उसमें उन्होंने मुंबई में ही परमाणु शक्ति आयोग में कार्य किया।

परमेश्वर राव को अब अपनी इच्छानुसार जीवन बिताने का अवसर मिला था। उन्होंने अपने पिता से स्पष्ट रूप से कह दिया कि "वे शेष जीवन डिमली में बिताना चाहते हैं।"

"वहां आप क्या करेंगे?" भाइयों ने प्रश्न किया।

"मैं वहां जाऊंगा और देखूंगा कि, मैं डिमली गांव के लोगों के लिए क्या कर सकता हूं? उन्हें सहायता की आवश्यकता है। वे निर्धन हैं। उनका शोषण किया जाता है। वहां बच्चों को अच्छी शिक्षा की आवश्यकता है। मैं उन्हें पढ़ा सकता हूं। मैं किसानों को बता सकता हूं कि वे जमीन से कैसे और अच्छी फसल ले सकते हैं? वहां काफी कुछ किया जा सकता है।" राव ने उत्तर दिया।

उनके पिता ने एक शब्द भी नहीं कहा। वे समझ गए कि परमेश्वर राव को समझाना फिजूल है।

राव डिमली आ गए। उनकी पत्नी भी उनके साथ गांव आ गयीं। पैतृक मकान में राव का घर जमाने में मदद के लिए भाई भी आ गए।

मकान की अच्छी तरह सफाई की आवश्यकता थी।

राव ने सफाई शुरू की। तमाम जाले आदि थे उन्हें हटाना शुरू किया। उनके भाइयों ने फर्नीचर की धूल झाड़ी। और उसे फिर से कायदे से लगाया। पत्नी ने फर्श की सफाई की। सबने इस तरह घर की झाड़-पोंछ की। मकान साफ लगने लगा था। वे थक गए थे लेकिन प्रसन्न मन से सोने गए।

अगले दिन सुबह राव जल्दी ही घर के बाहर घूमने निकल गए।

उन्होंने देखा कि बच्चे बस्ते लिए धूल भरे रास्तों पर चले जा रहे हैं। उन्होंने बच्चों से पूछा कि "वे इतने सवेरे घर से क्यों निकल पड़े हैं?" बच्चों ने बताया कि 'उन्हें स्कूल पहुंचने के लिए जल्दी निकलना पड़ता है क्योंकि स्कूल येलामंचाली में है।'

"तुम लोगों का मतलब है कि स्कूल पहुंचने के लिए तुम्हें पांच मील का रास्ता तय करना पड़ता है। और पढ़ने के बाद घर लौटने के लिए पांच मील फिर चलना पड़ता है?" वास्तविकता सुनकर राव को विश्वास नहीं हुआ।

अब राव को संकेत मिल गया कि उन्हें गांव की सेवा का श्रीगणेश कहां करना चाहिए।

उन्होंने तय कर लिया कि वे सबसे पहले गांव में ही स्कूल खोलेंगे।

'धन की व्यवस्था कैसे होगी? वह अपना पैसा नहीं लगाना चाहते थे। ये बात नहीं थी कि वे अपनी बचत को बचाए रखना चाहते थे। उन्होंने विचार किया कि जब तक इस कार्य में सार्वजनिक भागीदारी नहीं होगी तब तक योजना सफल नहीं होगी। भागीदारी होने पर लोग स्कूल की योजना को अपना समझेंगे। स्कूल जनता के प्रयत्न के फलस्वरूप खड़ा होगा।'

राव घूमते रहे और कई गांव वालों से मिले।

उन्होंने सबसे कहा कि "वह गांव के मंदिर में शाम को पहुंचें। वे गांव वालों से किसी महत्वपूर्ण विषय पर बात करना चाहते हैं।"

शाम को सब मंदिर में इकट्ठे हुए। लेकिन उनके मन में राव के इरादों

के बारे में संशय था। ग्रामवासी साधारण भोले लोग थे। शहर के कुछ स्वार्थी लोगों ने उन्हें अनेक बार बेवकूफ बनाया था। लेकिन उन्होंने पहले से राव के बारे में गलत धारणाएं नहीं बनाईं। वे राव की बातें सुनना चाहते थे और तब उनके बारे में कोई फैसला करना चाहते थे।

मन्दिर में राव ने अपनी योजना लोगों को बताई। और कहा, "हम लोग यहां एक स्कूल खोलेंगे। यह काम हम सब मिलकर करेंगे।"

"आपको इसके लिए रुपए की जरूरत पड़ेगी?" गांव के सबसे धनी व्यक्ति चीलूकामा ने पूछा।

"बेशक। हम सब लोग इसमें योगदान करेंगे।" राव ने कहा। फिर उस व्यक्ति ने कहा कि, "कहीं आप हमारे रुपए लेकर भाग गए तो?"

राव मुस्कुराए। और बोले, "आप इस संबंध में मेरे भाइयों से बात करें। वे यहीं हैं। वे आपको बताएंगे कि आप मेरे ऊपर क्यों भरोसा कर सकते हैं?"

तब राव के भाइयों ने लोगों से कहा कि "ये अमेरिका में पैंतीस हजार रुपए मासिक की नौकरी के प्रस्ताव को ठुकरा कर डिमली गांव आए हैं।"

"पैंतीस हजार रुपए मासिक की नौकरी?" गांव के सबसे धनी साहूकार को भी अचरज हुआ।

"जी हां। वह सब छोड़कर आए हैं। वे यहां रहना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि इस गांव की उन्नति हो।" इसके बाद राव के भाई प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करने लगे।

चीलूकामा ने कपड़े की थैली निकाली। उसकी डोरी खोली। उसके सारे रुपए निकाल कर सबके सामने रख दिए। सिक्के और नोट दोनों नकदी गिनी। उसमें से एक हजार रुपए चीलूकामा ने डाक्टर राव को दे दिए।

फिर रुपए आने शुरू हो गए। कहीं से कम कहीं से ज्यादा। राव ने भी योगदान दिया। शीघ्र ही नकद 57,000 रुपए इकट्ठे हो गए। अमेरिकन शान्ति कोर से भी राव ने सम्पर्क स्थापित किया तो वहां से भी 15,000 रुपए मिल गए।

स्कूल बनाने के लिए पर्याप्त रुपया इकट्ठा हो गया।

लेकिन एक नयी समस्या आ खड़ी हुई।

स्कूल को मान्यता नहीं मिली।

राव ने अनेक बार मुख्यमंत्री ब्रह्मानंद रेड्डी से भेंट की। फिर भी कुछ नहीं हुआ। राव ने हिम्मत नहीं हारी। उन्होंने राजनिवास के कई चक्कर काटे और राज्यपाल खांडूभाई देसाई से भेंट के लिए समय मांगा। लेकिन हर बार उन्हें छोटे अफसरों ने लौटा दिया।

उनका भाग्य उस समय खुला। जब उन्होंने राज्यपाल के ए.डी.सी. को बताया कि वे डिमली गांव के स्कूल में अध्यापक हैं। ए.डी.सी. उस समय चौंक गए जब राव ने उनसे धाराप्रवाह अंग्रेजी में बात की। अधिकारी ने उत्सुकतावश उनसे पूछा कि "क्या वे ग्रेजुएट हैं?" राव ने सब कुछ बताकर कहा कि वे डिमली में किस तरह अध्यापक बने।

ए.डी.सी. ने प्रशंसा भरी दृष्टि से राव को देखा।

उसने राव से कहा कि "कृपया थोड़ी देर प्रतीक्षा करें। मैं आपकी भेंट राज्यपाल से कराता हूं।"

थोड़ी देर बाद राव को राज्यपाल के पास ले जाया गया। राज्यपाल उठकर खड़े हो गए। उन्होंने राव से हाथ मिलाया। उनके पास बैठ गए। और कहा कि जनता की सेवा के अपने विचार विस्तार से बताएं। बातचीत काफी लंबी चली। अन्ततः मित्र के रूप में दोनों ने एक दूसरे से विदा ली। शीघ्र ही राव को समाचार मिला कि उनके स्कूल को मान्यता मिल गयी है।

अध्यापक ने अपना काम नहीं रोका। वह बराबर बच्चों को पढ़ाते रहे। उन्होंने बाद में प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था की। उन्होंने यह भी बताना शुरू किया कि अच्छी तरह खेती के तरीके अपनाकर ज्यादा फसल कैसे प्राप्त की जा सकती है। किस तरह दलदली और ऊसर जमीन पर खेती की जा सकती है। उन्होंने महिलाओं से मिलकर बताया कि मुर्गियां पालकर, पौधशालाएं बनाकर किस प्रकार वे अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकती हैं। उन्होंने नमक बनाना और खारे जलाशयों में मछली पालना भी बताया।

डिमली और उसके आसपास के गांव के लोग डाक्टर राव को सच्चा सेवक मानते हैं। उनके लिए वे भगवान का रूप हैं। वे अपनी समृद्धि और प्रगति का श्रेय अपने उस ग्रामीण भाई को देते हैं जो अमेरिका में पढ़ने के बाद भी अपने गांव में लौटा और बस गया।

जयपुर पांव

जयपुर के सवाई मानसिंह अस्पताल के अस्थि विभाग के पुर्नवास अनुसंधान केन्द्र में आने वाले पैरों से अपंग व्यक्तियों को बनावटी पैर लगाए जाते थे। इन अंगों को अंग्रेजी में 'सैक' यानी (सालिड एंगिल गद्दीदार हील्स) कहा जाता था। इनमें से अधिकांश लोग कृषक समुदाय के होते थे। इनके जो कृत्रिम पैर लगाए जाते उसे वे कुछ ही सप्ताह में निकाल फेंकते थे और पुन: वैसाखियों के सहारे चलने लगते थे।

डाक्टर पी.के. सेठी के लिए यह गहरा आघात था। नकली अंगों के बहिष्कार का समाचार पाकर वह सोचते कहां क्या गड़बड़ है? और इसका कोई अवश्य वैध कारण है। उन्होंने उन लोगों से बात की जिन्होंने बनावटी पैर लगाए जाने के बाद कुछ ही हफ्तों में उसका उपयोग करना छोड़ दिया था। पहले वे बात टाल देते थें। लेकिन डाक्टर सेठी ने हिम्मत नहीं हारी। धीरे-धीरे उन्होंने कारण का पता लगा लिया।

कारण बहुत साधारण था।

"सैक फुट" (नकली पांव) पश्चिम के लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति की दृष्टि से बनाए जाते थे। पश्चिम के लोग हमेशा जूते पहने रहते हैं, भारतीय किसान आम तौर पर कभी जूता पहनते ही नहीं हैं। इससे ही बड़ा अन्तर पड़ जाता है। बाद में डा. सेठी ने बातचीत करते हुए बताया कि पश्चिमी लोगों के लिए जो नकली पैर बनाया जाता है वह कोमल होता है इसी वजह से इसको सहारा देना पड़ता है तथा जूतों से उसकी रक्षा करनी पड़ती है। गांवों में जो लोग रहते हैं, वे कभी जूते पहनते ही नहीं। उन्होंने यह गौर किया कि पूर्व और पश्चिमी देशों के लोगों की संस्कृति भिन्न है। हमारी संस्कृति में लोग अक्सर जमीन पर बैठते हैं और पालथी मारकर बैठने का रिवाज है। इस तरह बैठने के लिए पैर को कई बार मोड़ना पड़ता है। इस तरह से पैरों को मोड़ने की आवश्यकता पश्चिम के लोगों को नहीं पड़ती

क्योंकि वे आमतौर पर कुर्सी पर ही बैठते हैं। इससे डा. सेठी समस्या का हल निकालने में जुट गए। उनके साथ जो अन्य डाक्टर काम कर रहे थे, उनको उन्होंने समस्या बताई और हल खोजने को कहा। लेकिन उनके पास कोई हल नहीं था।

कोई परम्परागत हल उपलब्ध नहीं था। नए सिरे से काम करना था। समाधान निकालने के मार्ग में जो मुख्य बाधाएं थीं उस पर डाक्टर सेठी ने सबसे पहले ध्यान दिया। उन्होंने अपने साथियों से कहा कि "यह केवल शल्य-चिकित्सा की कुशलता की समस्या नहीं है। जो औपचारिक शिक्षा क्लास रूम में हमें दी जाती है उसकी त्रुटियां ही हमारे हल के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है। निरर्थक और उच्चतर तकनीक के लिए जो दौड़ चल रही है वह ही इस मामले में सबसे बड़ी बाधा है। आवश्यकता वैज्ञानिक क्षमता बढ़ाने की है भले ही प्रौद्योगिकी का स्तर भले ही ऊंचा न हो।"

इस तरह स्वदेशी तकनीकी हल के लिए खोज शुरू हुई। डाक्टर सेठी ने तुरन्त अनुभव किया कि इस कार्य में स्थानीय कारीगरों, बढ़इयों, मोचियों और लुहारों के सहयोग की जरूरत है। उन्होंने महसूस किया कि स्थानीय रूप से कृत्रिम पैर बनाने की डिजाइन के लिए इनकी मदद लेनी पड़ेगी। अपंगों की सहायता के लिए सामाजिक जरूरत पूरी करने के वास्ते इन कारीगरों के पास अनुभव का जो खजाना है उसका उपयोग क्यों न किया जाए?

डाक्टर सेठी इन कारीगरों के साथ स्वयं बैठे। उनके साथ अपनी आवश्यकताओं के बारे में बातचीत की। उन्होंने बतलाया कि उन्हें उनके कौशल की क्यों जरूरत है। डाक्टर सेठी ने उन्हें प्रेरणा दी। उन लोगों ने कई नमूने बनाए, वे उन्होंने देखे। उनमें से कई नमूने भारी थे। अनेक परीक्षणों के बाद, आखिर नया डिजाइन उभरकर सामने आया। एक कारीगर ने पैर का वह सांचा बनाया जिसमें उसे ढाला जा सकता था। डिजाइन 'सेण्ड कास्टिंग' की परंपरागत तकनीक का इसमें उपयोग किया गया था। एक मामूली दुकान जो सड़क के किनारे थी और टायर रिट्रेडिंग का काम करती थी उसके मालिक ने डिजाइन को जोड़ना यानी वल्कनाइज करने का काम अपने हाथ में लेना स्वीकार किया। उसको आम पैर के अनुकूल बनाकर डाई बनाई गयी।

जिस छड़ से कृत्रिम पैर बनता था वह लकड़ी के टुकड़ों पर टखने के अन्दर से गुजरता और यह टखना टुकड़ों से बना होता। छड़ उस एड़ी पर टिका रहता जो स्पंज रबड़ का बना होता है और वह सख्त रबड़ से घिरा होता था। इससे एड़ी घिसती या काम में लाने पर कटती नहीं थी। पैर का अगला हिस्सा, अंगूठे, उंगलियां, भी स्पंज रबर की बनाई जातीं।

इन सब को रेशमी डोरे से बांध दिया जाता जिससे वे अतिरिक्त शक्ति द्वारा आपस में बंधे रहते। इसके बाद पूरे पैर को मोटी रबर से ढक दिया जाता। रबर का रंग स्वाभाविक त्वचा के रंग का होता है। सन् 1975 में डाक्टर सेठी ने 59 लोगों को यह पैर जिसे 'जयपुर फुट' के नाम से जाना जाता है, लगाया। जिनको जयपुर फुट लगाया गया उन पर डाक्टर सेठी ने व्यक्तिगत निगाह रखी। उन लोगों ने उस पैर को काम में लाना नहीं छोड़ा। उन्होंने वैसाखियों का प्रयोग भी नहीं किया। इसके बजाय वे यह कहने डाक्टर के पास आये कि नए पैर से कितने प्रसन्न हैं। उन्हें जमीन पर बैठने में कोई कठिनाई नहीं हो रही थी। पांव को एक दूसरे पर रखने में भी कोई कठिनाई नहीं होती थी। वे मैदान या खेत से होकर जा सकते थे। कभी-कभी इन खेतों में पानी भी भरा होता था। कुछ ने तो साइकिल का उपयोग भी शुरू कर दिया था।

यह खबर चारों ओर जंगल की आग की तरह फैल गयी।

डाक्टर सेठी के पास यह पैर लगवाने दूर-दूर से लोग पहुंचने लगे।

पुर्नवास इंजीनियरिंग सलाहकार डाक्टर ओबर जो विश्व स्वास्थ्य संगठन से सबद्ध थे ने डाक्टर सेठी को बधाई दी। यह दफ्तर दक्षिण पूर्व एशिया के क्षेत्रीय कार्यालय, नई दिल्ली से जुड़ा हुआ है। विश्व स्वास्थ्य संगठन को डाक्टर ओबर ने रिपोर्ट भेजी उसमें उन्होंने लिखा है – 'इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि कमर से नीचे के अंग को ऐसा बनाया जाए जो भारतीय रोगी के शरीर को स्वीकार्य हो . . .कुछ ही वर्षों में, मैं समझता हूं जयपुर केन्द्र दक्षिण पूर्व एशिया के क्षेत्रीय अनुसंधान और प्रशिक्षण के केन्द्र के रूप में काम कर सकेगा। जयपुर में जो हल निकाला गया है अफ्रीका और लैटिन अमेरिकी देशों में भी काम में आने लगेगा।'

जयपुर में बने पांव के कई लाभ हैं।

एक तो यह बड़ा सस्ता है। इसे गांव के कारीगर भी बना सकते हैं। दूसरे रख-रखाव में आसान है। अपंग व्यक्ति स्वयं छोटी-मोटी मरम्मत कर सकते हैं। परीक्षण अंग या पांव नाप लिए जाने के बाद पैंतालीस मिनट में बनाया जा सकता है।

मार्च 1981 में बेलेन एब्रू फिलीपीन्स से जयपुर पहुंची। उन्होंने अपने आपको सामाजिक कार्यकर्ता बताया। उन्होंने पुनर्वास केन्द्र का काम देखा। वे उससे बड़ी प्रभावित हुईं डाक्टर सेठी और उनके सहयोगियों के नेतृत्व में हुए

काम के बारे में उन्होंने उस कमेटी को अपनी रिपोर्ट दी जो मेगसायसे पुरस्कार के निर्णय के बारे में नियुक्त की गयी थी।

पहली अगस्त 1981, डाक्टर सेठी दोपहर के भोजन के बाद विश्राम कर रहे थे।

यकायक उनका फोन बजा। डाक्टर सेठी जाग गए। हिचकिचाते और जम्हाई लेते हुए उन्होंने फोन उठाया। उन्हें बताया गया कि उन्हें सामुदायिक नेतृत्व प्रदान करने के लिए उस वर्ष का मैगसायसे पुरस्कार प्रदान किया गया है।

वे अपने कानों पर विश्वास नहीं कर सके। निस्संदेह यह शुभ समाचार था। उसके बाद एक और विचार उनके मन में आया। केवल उन्हें एकमात्र को पुरस्कार के लिए चुना गया था। क्या यह ठीक था? वे लोग भी पुरस्कृत करने योग्य थे जिन्होंने उनके साथ काम किया था। उन्होंने अपनी भावनाओं को छिपाया नहीं। दो दिन बाद उन्होंने समाचार पत्रों को बताया कि "सम्मान सामूहिक रूप से उस पूरी टीम को मिलना चाहिए जिसने 'जयपुर फुट' को डिजाइन करने और विकसित करने में हाथ बंटाया है। अगर इन सब लोगों ने मदद नहीं की होती तो मुझे यह पुरस्कार न मिला होता। . . .चिकित्सक विशेषज्ञ, और कारीगर जिन्होंने पांव को बनाने में सार्थक सहयोग न दिया होता तो ये जयपुर फुट न बन पाता।"

आज न केवल भारत में बल्कि अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमरीका के लोग सही ढंग से चलकर इस कृत्रिम पैर का लाभ उठा रहे हैं। इसका श्रेय जयपुर फुट को ही जाता है।

सेवा के लिए समर्पित

धर्म सम्मेलन में भाग लेने पोप षष्टम 1964 में मुंबई आए। भारत के कैथोलिक ईसाइयों के लिए यह दुर्लभ अवसर था। पोप की झलक पाने के लिए बहुत से कैथोलिक मुंबई पहुंचे। उन्होंने अपने धार्मिक पथ-प्रदर्शक का स्वागत किया। पोप के प्रेम, करुणा और दान के संदेश को लोगों ने सुना।

मदर टेरेसा इस सारे माहौल में सितारे की तरह थीं।

सम्मेलन आशावादी प्रस्तावों को पारित कर समाप्त हुआ।

इसके बाद पोप मदर टेरेसा की तरफ मुड़े। उन्होंने कहा कि 'मदर टेरेसा की संस्था *मिशन ऑफ चैरिटी* की सफलता से वे काफी प्रसन्न हैं। मदर टेरेसा ने विश्व भर को दिखला दिया है कि यदि किसी में संकल्प शक्ति हो तो वह क्या कुछ करके दिखा सकता है। जो लोग फुटपाथों पर रहते हैं, कुष्ठ रोग से ग्रस्त हैं उन्हें मदर टेरेसा ने किस तरह आशा की किरण दिखलाई है। जो लोग जीवन के अंतिम क्षण गिन रहे हैं, कैसे उन्होंने उनके लिए आश्रय सदन स्थापित किए हैं जिससे वे सम्मान के साथ प्राण त्याग कर सकें।' 'निर्मल हृदय' ऐसे आदर्शों की मिसाल बन गया था। जिनका प्रचार प्रभु यीशु ने किया था। इससे मदर टेरेसा सारी मानवता की प्रिय पात्र बन गयी थीं।

मदर टेरेसा ने धीरे से कहा, "मैं तो प्रभु यीशु की विनम्र सेविका हूं।"

पोप समझ गए। अगर उनके पास कुछ और सेवक हों जो ईश्वर और यीशु की सेवा के लिए इसी तरह तत्पर हो तो ये संसार स्वर्ग बन सकता है। लेकिन वे समझते थे कि मदर टेरेसा जैसी त्याग और सेवा को समर्पित विभूतियां भगवान की कृपा से ही प्राप्त होती हैं। उनको रचा नहीं जा सकता।

पोप मदर टेरेसा को कुछ उपहार देना चाहते थे।

फिर उन्हें याद आया कि बहुत बड़ी कार उनके उपयोग के लिए हवाई



जहाज से मुंबई लाई गयी है। भारत में सड़क यात्रा के लिए यह पोप के काम आने वाली थी। वह कार पोप के लिए विशेष रूप से निर्मित की गयी थी।

पोप ने विचारा कि यह कार मदर टेरेसा के लिए सर्वोत्तम उपहार होगा। उन्होंने अपना निर्णय तुरन्त वहीं घोषित कर दिया।

मदर तुरंत घुटनों के बल बैठ गयीं। पोप ने उन्हें आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद के साथ कहा कि यह उपहार उनके अभूतपूर्व कार्य के लिए दिया गया है जिससे वे भी प्रेम के इस सार्वभौम मिशन में हिस्सा ले सकें।

मदर ने सिर उठाकर ऊपर देखा और कृतज्ञतापूर्वक कहा, "ईश्वर की इच्छा पूरी होगी।"

उस बड़ी गाड़ी का वे क्या कर सकती थीं?

आने जाने के लिए उन्हें उस कार की आवश्यकता नहीं थी।

क्या इस उपहार में कोई दैवी इच्छा थी? तब उन्हें एक बात सूझी। कार बेची जा सकती थी। कार एक लाख रुपए तक में बिक सकती थी। उन दिनों एक लाख रुपया बड़ी रकम मानी जाती थी। मिशन जो सेवाएं प्रदान करता था, इस राशि द्वारा इन सेवाओं का विस्तार किया जा सकता था। मिशन का हाथ हमेशा तंग रहता था। दिन प्रतिदिन ज्यादा-से-ज्यादा लोग मिशन की सेवाएं चाहते थे। भारत के विभिन्न भागों से मांग आती रहती थी कि मिशन के केन्द्र उनके यहां भी खोले जाएं। गरीब देश विशेषकर दक्षिणी अमरीकी देश के लोग पूछताछ करते रहते थे। इसलिए कार बेचकर जो रुपया आता वह दरिद्रों और निर्धनों की सेवा में लगाया जा सकता था। इससे सेवा के काम में कुछ और सहायता मिल सकती थी।

और तब ही एक और विचार आया। क्यों न एक लॉटरी शुरू की जाए? इससे और ज्यादा धनराशि मिल सकती थी। कार विजेता को मिलती और रुपया भी ज्यादा आता।

टिकटों की बिक्री से कितना रुपया आ सकता था?

मदर ने अपने सहयोगियों, मित्रों, शुभचिन्तकों से विचार-विमर्श किया। उन्होंने कहा कि लाटरी से निश्चय ही अधिक धन मिलेगा।

आकाश की तरफ हाथ उठाकर मदर टेरेसा ने कहा, "यही ठीक है।"

सारे टिकट हाथों हाथ बिक गए। प्रत्येक टिकट का मूल्य दस रुपए था। पचास हजार टिकट बिके। लगभग पांच लाख रुपया आया।

लाटरी निकालने से पहले अनेक लोगों ने मदर टेरेसा को आश्वासन दिया कि यदि लाटरी में कार उन्हें मिली तो उसे वे वापस कर देंगे ताकि दूसरी बार उसके लिए फिर लाटरी लगाई जा सके।

"जीसस की इच्छा!" मदर ने उत्तर दिया।

निश्चित तिथि पर 'ड्रा' हुआ।

जो विजयी हुआ वह उनमें से नहीं था। जिन्होंने दूसरी लाटरी के लिए वापस देने का वादा किया था। मदर टेरेसा ने इस बात की कोई परवाह नहीं की। सेवा कार्य के लिए पांच लाख रुपए आ गये। यह रकम उससे कहीं अधिक थी जो कार को बेचने से आती।

हल्के मूड में उन्होंने उन उदारमना लोगों के लिए प्रार्थना की थी जिन्होंने कार वापस करने का वादा किया था। उनका चेहरा प्रसन्नता से दमक उठा जब उन्होंने रुपयों के लिए लालच स्वीकार किया। मदर टेरेसा को पैसा अपने लिए नहीं बल्कि सेवा कार्य के लिए चाहिए था।

साक्षात देवी

चेन्नई में गर्मी का मौसम हमेशा ही कष्टदायी होता है। सन् 1981 के अप्रैल माह की चिपचिपी गरमी भी इसका अपवाद नहीं थी। सुप्रसिद्ध कनार्टक संगीतज्ञ एम.एस. सुब्बालक्ष्मी का संगीत सम्मेलनों में तानपूरे पर साथ देने वाले रामाजयम जमीन पर ही लेटे थे। उनके मन में तरह-तरह के विचार आ रहे थे।

उन्हें केरल में अपने घर की याद आ रही थी। घर के सामने मैदान था। उसमें ताड़ के पेड़ हवा में लहराते थे। उन्हें अपने बचपन के दिनों की याद आ रही थी, जब वे प्रसन्न रहते थे। विशेष रूप से उस समय जब वे अपने पिता वी.एम. नायर के साथ सैर के लिए जाया करते थे। वृद्ध पिता उनका हाथ पकड़े रखते थे और फुटपाथ पर लेकर चलते थे। ये पगडंडियां धान के खेतों और अमराइयों से गुजरती थीं। नायर के पास अच्छा काम था। उनके पास अपना मकान था। उनके परिवार में लड़के-लड़कियां मिलाकर कुल ग्यारह बच्चे थे। उनकी आपस में नोंक-झोंक चला करती थी।

उन्हें जीवन में जो कुछ मिल सकता था वह सब संगीत से ही संभव हो सकता था। वह किताबों की अधिक परवाह नहीं करते थे। उनके सामने पुस्तक होती थी लेकिन उनके कान उस अच्छे संगीतकार के मधुर स्वरों पर केन्द्रित रहते थे जो उनके पड़ोसी के रेडियो से आता रहता था। रामाजयम के पिता ने सारी आशा छोड़ दी थी कि उनका पुत्र पढ़-लिखकर नाम कमाएगा और अच्छा जीवन बिताएगा।

नायर ने रामाजयम को पालघाट के अच्छे संगीत स्कूल में भर्ती कराने का निर्णय किया। रामाजयम खुशी से भर गया। ऐसा लगता था कि उसका सपना साकार हो गया।

लेकिन यह खुशी ज्यादा दिनों तक नहीं रही। शीघ्र ही खबर आयी कि उसके पिता बहुत बीमार हो गए हैं। डाक्टर पता नहीं लगा सके कि उन्हें क्या

बीमारी है। वे कमजोर हो गए थे। वे दफ्तर में भी काम नहीं कर पाते थे। जल्दी ही उनकी सारी छुट्टियां खत्म हो गयीं। अन्ततः दफ्तर से नोटिस आ गया। उनकी सेवाएं समाप्त कर दी गयीं।

नायर के पास जो छोटी-मोटी बचत थी, वह हवा में कपूर की तरह उड़ गयी।



उन्होंने सभी उपलब्ध साधनों से परिवार के लिए धन जुटाने की कोशिश की।

रामाजयम ने अपने पिता की स्थिति समझी। उन्होंने संगीत की पढ़ाई बन्द करने का निर्णय लिया।

स्कूल के प्रधानाचार्य को यह बात बड़ी अप्रिय लगी। रामाजयम स्कूल का प्रतिभाशाली छात्र था। लेकिन प्रधानाचार्य असहाय थे। वे कुछ नहीं कर सकते थे।

प्रधानाचार्य ने रामाजयम से पूछा, "अब तुम क्या करने की सोच रहे हो।"

"मैं नहीं जानता, सर", रामाजयम ने उत्तर दिया, "मैं अपने परिवार की सहायता करना चाहता हूं। मुझे निश्चय ही कुछ काम करना चाहिए।"

"सुनो, मैं तुम्हें एक पत्र देता हूं। इसे तुम एम.एस. सुब्बालक्ष्मी के पास ले जाओ। उन्होंने कुछ दिन पहले मुझसे कहा था कि उन्हें ऐसा व्यक्ति चाहिए जो संगीत समझता हो और मेरे साथ तानपूरा बजा सके। अगर जगह रिक्त हुई तो वे तुम्हें रख लेंगी। मैं जानता हूं तुम उनके साथ प्रसन्न रहोगे। इस महान संगीतज्ञ के साथ काम करते हुए तुम्हें संगीत की शिक्षा भी मिल जाएगी। वे निश्चय ही वाणी सरस्वती हैं।" इस तरह प्रधानाचार्य ने रामाजयम को पैसे कमाने का अवसर प्रदान किया।

"अगर मुझे यह नौकरी मिल जाए तो क्या कहना है। इतनी सुप्रसिद्ध गायिका के साथ रहकर मुझे कितनी प्रसन्नता होगी।"

इस तरह रामाजयम चेन्नई पहुंचे। एम.एस. सुब्बालक्ष्मी ने वह पत्र पढ़ा। सुब्बालक्ष्मी ने अनुभव किया कि प्रिंसिपल की दृष्टि में लड़के में बड़ी प्रतिभा है। उन्हें ज्ञात हो गया कि यह लड़का बीच में ही अपनी संगीत शिक्षा क्यों छोड़ रहा है।

उन्होंने रामाजयम को रख लिया।

रामाजयम उनके साथ हरेक संगीत सम्मेलन में जाने लगा। वह तानपूरे के तारों को इस तरह कसता कि गायक की आवाज के साथ श्रुति मिल जाय।

यकायक घर से फिर अशुभ समाचार आया।

पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नायर ने अपना मकान एक सहकारी बैंक के नाम गिरवी रखकर पैंतीस हजार रुपया उधार लिया था। वृद्ध

पिता का विचार था कि वे विपत्तियों से जल्दी ही निजात पा जाएंगे। उन्होंने सोचा कि जल्दी ही कोई दूसरी नौकरी मिल जाएगी और वे सारा कर्जा चुका देंगे।

यही एक आशा थी।

लेकिन नायर की बीमारी चलती ही रही। उधार का रुपया चुक ही न पाया। ब्याज समेत बैंक को जो रुपया देना था, वह आठ हजार तक पहुंच गया।

रामाजयम पिता की दुखद अवस्था अनुभव कर रहा था।

वह वेतन से निश्चित राशि घर भेजा करता था। वह राशि घर की न्यूनतम जरूरतों को पूरा करती थी।

रामाजयम को उसके पिता ने पत्र में लिखा कि 'बैंक के ऋण की कोई भी किश्त नहीं दे पाए हैं। चुकाने का कोई रास्ता भी नहीं सूझ रहा था। उन्हें लगता था कि ऋण की राशि के बदले बैंक कहीं मकान पर ही दावा न कर दे। उन्होंने बड़े खेद के साथ आगे लिखा था कि तब हम सबको सड़क पर आ जाना पड़ेगा। अगर भगवान की ऐसी ही मर्जी होगी तो ऐसा ही होगा। उन्हीं विचारों के साथ रामाजयम करवटें बदल रहा था। नींद नहीं आ रही थी।

इतने में उसने एम.एस. सुब्बालक्ष्मी की आवाज सुनी। वे उसे बुला रही थीं। रामाजयम उनके पास भागा। एम.एस. ने उसकी तरफ देखा और पाया कि उसकी आंखें लाल हो गई थीं और सूजी हुई थीं। क्या वह रो रहा था?

"क्या बात है, रामू? क्या समस्या है? क्या तुम रो रहे थे। क्या तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं है।" उन्होंने पूछा।

"कुछ नहीं अम्मा . . .कुछ नहीं" उसका गला रुंध गया।

"मेरे बेटे! मेरे बच्चे! मुझे बताओ। हो सकता है मैं तुम्हारी कुछ मदद कर सकूं।" उन्होंने कहा।

रामाजयम ने अपने हृदय का दर्द खोलकर उनके सामने रख दिया। वे उसकी व्यथा-कथा बड़े ध्यान से सुनती रहीं फिर बोलीं, "तुम्हारे पिता का मकान नहीं जाएगा। मैं वादा करती हूं।"

"लेकिन कैसे?" रामाजयम जानना चाहता था।

"इन्तजार करो" और श्रीमती सुब्बालक्ष्मी ने रामाजयम से अपना तानपूरा लाने को कहा।

कुछ दिन बाद 27 अप्रैल, 1981 को अपनी संगीत पार्टी के साथ एम.एस. कोच्ची पहुंची। उन्हें 'रसिक प्रिया' नाम के स्थानीय क्लब के तत्वावधान में गाना था। क्लब ने शो के लिए टिकट बेचकर आठ हजार रुपए जमा किए थे।

जब एम.एस. ने गायन शुरू किया तब हाल ठसाठस भरा हुआ था। कई राग सुनाकर गायिका ने लोगों को संगीत का दिव्य आनन्द दिया। उनके जादुई कंठ ने लोगों को मंत्रमुग्ध कर दिया।

जब कार्यक्रम की इतिश्री हुई तो भीड़ ने बड़ी हर्षध्वनि की।

एम.एस. क्लब के सचिव की ओर मुड़ीं। उन्होंने उससे कहा कि वे नायर और कोऑपरेटिव बैंक के मैनेजर को मंच पर बुलाए। इन दोनों को विशेष निमंत्रण पर बुलाया गया था।

रामाजयम अपने वृद्ध पिता को सहारा देकर मंच पर लाया। वृद्ध ने झुक कर एम.एस. का अभिवादन किया। मैनेजर ने हाथ जोड़कर सभी संगीतज्ञों को नमस्कार किया।

एम.एस. ने वह थैली जिसमें क्लब द्वारा टिकट की बिक्री से प्राप्त रकम थी सचिव से ली। वह थैली उन्होंने नायर को दी और कहा अब आप यह थैली बैंक के मैनेजर को दे दें। नायर ने निर्देश का पालन किया। उन्होंने वह थैली बैंक मैनेजर को दे दी। सुब्बालक्ष्मी ने नायर से कहा, "आपने मकान गिरवी रखकर जो रुपया उधार लिया था, वह सूद समेत चुक गया। अब मकान आपका है। वह गिरवी से मुक्त है। बैंक को अब आपसे कुछ नहीं लेना है।"

नायर फूट-फूट कर रोने लगे। एम.एस. ने रामाजयम की तरफ देखा। वह भी अपने कानों पर विश्वास नहीं कर पा रहा था। वह सुब्बालक्ष्मी के पैरों पर गिर पड़ा और उसके ओठों से ये शब्द निकल पड़े, "आप मेरे लिए साक्षात देवी हैं।"

महात्मा के पद चिन्हों पर

दिल्ली में सर्दियों के प्रभात की ठंड थी। मीरा महादेवन अपने घर के बरामदे में खड़ी थीं। और खिलते फूलों की सराहना कर रही थीं। उनका घर राजघाट के पास था। उनकी आंखें चारों तरफ दौड़ती हुई उन गुलाबों पर टिक गयीं, जो खिल गए थे। गुलाबों के मनमोहक रंग उनको शान्ति दे रहे थे।

मीरा की आयु चालीस के करीब थी। थोड़ी स्थूल होने के बावजूद उनके नाक-नक्श बड़े अच्छे थे। उनमें लोगों को मोहित और आकर्षित करने की शक्ति थी। उनका व्यवहार बड़ा सौहार्दपूर्ण था और वे लोगों का बड़ा ध्यान रखती थीं। उनका विश्वास था कि लोगों की सेवा करते हुए जीवन को पूर्णता के साथ बिताना चाहिए।

वे ऐसे भारत की कल्पना करतीं थी जब यहां निर्धनता अतीत की बात हो जाएगी। उन्हें उस दिन की प्रतीक्षा थी जब देश के प्रत्येक निवासी को उसकी आवश्यकता की कम-से-कम हर चीज उपलब्ध होगी। उन्हें अपने स्वप्न पर विश्वास था। महात्मा गांधी ने उनके सपने के भारत को साकार करने का मार्ग दिखा दिया था।

मीरा के लिए गांधीजी केवल एक नाम भर नहीं थे। वे उनके साथ कभी नहीं रही थीं और न उन्होंने उनको देखा था। मीरा के लिए गांधीजी के प्रवचनों और उपदेशों का शाश्वत महत्व था। मीरा उनकी सराहना इसलिए करती थीं कि गांधी जो कहते थे, वही करते थे। मीरा गांधी जी को भली प्रकार समझती थीं।

मीरा के पति टी.के. महादेवन गांधीवादी विद्वान थे। मीरा ने सारी परंपराएं तोड़कर उनसे विवाह किया था। महादेवन दक्षिण के हिन्दू थे और मीरा यहूदी थीं जो उत्तर भारत की थीं। वे एक दूसरे को बहुत चाहते थे। उन्हें लगा कि

वे एक-दूसरे के लिए ही जन्मे हैं। उनके वही समान आदर्श थे, जो मानवता को महात्मा गांधी ने उपहार स्वरूप दिए थे।

मीरा सर्वदा ऐसे अवसर की ताक में रहती थी जिसमें वह कुछ ऐसा कर सकती जिस कार्य पर महात्मा गर्व करते। महात्मा गांधी ने जो चमत्कार किया था काश, वह उसके एक अंश के बराबर भी कर पातीं।

यह इच्छा उसके मन में बराबर उठती लेकिन उसकी समझ में नहीं आता था कि वह क्या करे?

केवल कोई उन्हें बता दे कि वह क्या करे?

किसी संवेदनशील व्यक्ति को कोई कैसे बता सकता था कि वह समाज सेवा कैसे करे? मीरा को भरोसा था कि उचित समय पर कोई-न-कोई उसका मार्गदर्शन कर देगा। वह उस प्रकाश किरण की प्रतीक्षा कर रही थी जो उसे सेवा का मार्ग दिखला सकेगी।

महात्मा की 100वीं जन्मतिथि मनाने के लिए 1968, में जो समिति बनाई गयी थी मीरा को उसका सदस्य बनाया गया। कमेटी ने विभिन्न कार्यक्रमों पर विचार किया। गोष्ठियों, सभाओं, प्रदर्शनियों और गांधी स्मृति में टिकट आदि जारी करने के अनेक कार्यक्रमों पर विचार किया गया।

मीरा के लिए मौका ज्ञानदर्शन का था। मीरा उस मार्ग का चक्कर काट कर लौट आयी जहां खिले हुए फूल हवा के झोंकों से नाच रहे थे। उस पार खुले मैदान में राजघाट के पीछे, बहुत से मजदूर, निर्माण कार्य में लगे थे। उन्होंने देखा कि वे इधर-उधर भाग दौड़ कर रहे थे। कोई ईंटें ले जा रहा था तो कोई सीमेंट और कंकड़ियों से भरे तसले इनमें ज्यादातर वे लोग थे जो भूमिहीन खेतिहर के रूप में काम करते थे और पड़ोसी राज्य राजस्थान से आए थे। वे अपना घरबार छोड़कर दिल्ली आए थे। निर्माण स्थल के पास ही झुग्गियां बनाकर वे उनमें रहते थे। ये झोंपड़ियां उठाऊ चूल्हों की तरह थीं। इनमें कोई सुविधाएं नहीं थीं। स्वास्थ्य और स्वच्छता की कोई व्यवस्था नहीं थी। यहां ये श्रमिक दयनीय वातावरण में रहते थे।

वे निर्माण स्थल पर तड़के (सुबह) आ जाते। उनके साथ उनके दूध पीते बच्चे, बालक और किशोर, सभी वय की उन पर आश्रित सन्तानें भी होती थीं।

बच्चे आसपास खेलते रहते थे। अक्सर धूल में भी। बहुधा बच्चों की आपस में लड़ाई हो जाती। अपशब्दों का आदान-प्रदान भी हो जाता। एक-दूसरे से मारपीट भी हो जाती। लड़ाई में किसके कहां चोट लगेगी इसका भी उन्हें

ध्यान नहीं रहता। हां, लड़कियां अवश्य इन झगड़ों से दूर रहतीं। वे गोटियों से खेलतीं या रस्सी को लेकर उस पर कूदतीं, धूल भरे बालों में से कभी-कभी जुएं निकालती। कभी वे छाया में पड़े उन बच्चों को संभालती जो मां बाप उनके पास देखभाल के लिए छोड़ जाते थे।

इन बच्चों का भविष्य क्या होगा? मीरा सहसा उनकी इस स्थिति के प्रति सजग हो गयीं। वे निपट निर्धन थे। यह एक ऐसा क्षेत्र था जिसमें मीरा कुछ कर सकती थीं। मीरा ने अपने मन में सोचा जब निर्धनता को कहीं आप दूर से देखें तो उसके अस्तित्व को नकार सकते हैं। जब आप उसे पास से देखते हैं तब आप सोचने को विवश हो जाते हैं कि आपको उससे संघर्ष करना ही होगा।

मीरा ने सोचा वह निर्धनता से मुकाबला करेंगी।

मीरा ने तीन हजार रुपए इकट्ठे किए। कुछ तो उसकी बचत के थे और कुछ मित्रों ने दान में दे दिए थे। उसने एक ठेकेदार से प्रदर्शनी स्थल के पास एक तंबू लगाने की अनुमति प्राप्त कर ली। वहां मीरा ने छोटे बच्चों के लिए 'क्रेच' बना लिया। एक आया भी रख ली। एक टब, साबुन, तौलिए आदि प्राप्त कर लिए और मार्च 1969, में काम शुरू कर दिया।

आरंभ में मजदूरों को संदेह हुआ, ये मैडम उनके बच्चों की देखभाल के लिए इतनी तकलीफ क्यों उठा रही हैं? वे यह नहीं समझ सके कि मध्य और उच्च वर्ग में कुछ लोग ऐसे हैं जो उनसे दया और सहानुभूति रखते हैं। बहुत से मजदूरों ने अपने बच्चों को मेमसाहब के पास जाने से मना कर दिया। फिर भी कुछ बच्चों ने आना नहीं छोड़ा। कुछ महिला मजदूर अपने छोटे बच्चों को उनके पास छोड़कर जाने लगीं। मीरा उनको नहला-धुला देतीं तथा कपड़े बदल देतीं। उन्हें कहानियां सुनातीं। इस प्रकार प्रेम द्वारा मीरा ने उनका दिल जीत लिया।

यह खबर फैल गयी।

शनैःशनैः मजदूरों का उनके प्रति डर जाता रहा।

उन्हें अपनी गलती का एहसास हुआ। उन्होंने समझ लिया मेमसाहब निर्धनों की सच्ची दोस्त हैं। वे भली और परोपकारी हैं। मेमसाहब निर्धनों की निःस्वार्थ भाव से सेवा करती हैं।

वे उनको बच्चों के साथ खेलते देखते। उन्होंने यह भी देखा मीरा उनमें से अपने आपको एक मानने लगी। मीरा ने बच्चों को गिनती सिखायी और गीत

सिखाए। वह उनके साथ गीत दोहराते। जब वे अच्छी तरह गीत याद कर लेते तो मीरा भी उनके साथ ही गातीं। वह साथ खेलतीं, भागतीं, दौड़तीं। वे गिरते तो वह भी उनके साथ गिरतीं। सब मिलकर हंसते-हंसाते। वह स्वयं उनके साथ हंसतीं। वह उनमें से ही एक बन गयीं।

बच्चे मीरा को बहुत चाहने लगे। वह उनकी सबसे अच्छी दोस्त बन गयी।

शीघ्र ज्यादा-से-ज्यादा बच्चे क्रेच में आने लगे। दिल्ली में स्थापित होने वाला यह पहला क्रेच था। मीरा के लिए यह सेवा के प्रति समर्पण था। यह श्रमिकों के लिए था। ज्यों-ज्यों उसके प्रयत्नों की सफलता सामने आने लगी त्यों-त्यों मीरा का हृदय हर्ष और प्रसन्नता से भरने लगा।

मीरा ने सेवा का मार्ग खोज लिया था। वे निर्धनों की सेवा का साधन बन गयी थीं। इस तरह उसने अपने आपको मानसिक द्वन्द्व से मुक्त कर लिया था। उसने अपने को महात्मा का सच्चा सेवक बना लिया था। और वह भी उनके जन्म-शताब्दी वर्ष में।

शायद, महात्मा गांधी की जन्म-शताब्दी वर्ष में महात्मा को मीरा का प्रेम का यही उपहार था। इस उपहार ने सैकड़ों बच्चों के हृदय में उल्लास भर दिया था।

रात के प्रकाश में

बोस्टन में आकर्षक, उमंग से भरी 22 वर्षीया छात्रा इडा स्कडर, रहती थी। घर के बाहर की गतिविधियों में भी उसकी रुचि थी। देर रात की पार्टियों और नृत्य आदि में हिस्सा लेने में उसे बड़ा आनन्द आता था। वह पार्टियों में हास-परिहास करती, लोगों को छेड़ती, लोगों की नकल बनाती। वह ऐसे सारे काम करती जिससे प्रगट होता कि वह उत्साहयुक्त युवती है जो जीवन को पूरी तरह जीना चाहती है।

पर उसके रिश्तेदार अक्सर सोचते थे कि पता नहीं उसका भविष्य क्या होगा।

उसके दादा डाक्टर थे। वे सन् 1819 में जलपोत द्वारा भारत आ गए थे। उनका लक्ष्य था मिशनरियों के आन्दोलन में शामिल होना। यही मार्ग इडा के पिता ने भी अपनाया था। उनका नाम था जॉन स्कडर। वह तमिलनाडु में तिनडिवनम में लोगों के बीच सेवा और समर्पण के काम करते थे। वे न केवल डाक्टर थे बल्कि तिनडिवनम के स्थानीय लोगों की समस्याओं और चिन्ताओं को दूर करने के लिए मार्गदर्शक भी थे, उनको सन्मार्ग में चलने में मदद भी करते थे। इडा के बहुत से पारिवारिक मित्रों ने मान रखा था कि इडा अपने पिता के पास जाकर मिशनरी हो जाएगी।

लेकिन इडा ने इस बारे में गंभीरता से नहीं सोचा था। जो भी हो, उसे अमेरिका की जीवन-शैली पसन्द थी। उसके रिश्तेदार ने एक बार भावी जीवन के बारे प्रश्न उठाया था तो उसके उत्तर में उसने कहा था, "मैं यहां अमेरिका में रहूंगी। मैं यहां आनन्द करूंगी। किसी अमीर युवक से शादी कर लूंगी और सुख का जीवन बिताऊंगी।" सन् 1893, में इस प्रकार के भावी जीवन की कल्पना उसने की थी।

लेकिन प्रारब्ध ने इसमें बाधा डाल दिया।

उसे समाचार मिला कि उसकी मां की तबीयत खराब है। उनकी सेवा की निरंतर आवश्यकता है। क्या इडा भारत आ कर दो मास अपनी बीमार मां की सेवा कर सकती है?

इडा तुरंत भारत के लिए रवाना हो गयी। उसने मित्रों से कहा 'कुछ ही मास में वह अमेरिका लौट आएगी।'

इडा का भारत आगमन खुशी का विषय था। पूरा परिवार एक बार फिर इकट्ठा हो गया।

परिवार हास-परिहास से गूंजने लगा। वातावरण संगीत से प्रतिध्वनित हो गया। इडा ने बड़ी लगन से अपनी मां की सेवा की। उसके पूर्ण उत्साह से चारों तरफ हर्षोल्लास छा गया।

उसकी मां के स्वास्थ्य में भी सुधार हुआ।

लगभग दो मास गुजर गए। इडा ने अमेरिका वापस जाने का प्रोग्राम बना लिया।

वह अपने मित्रों के बीच रहना चाहती थी। वह कल्पना कर रही थी कि कई युवक दोस्तों में से किसी एक से विवाह कर लेगी। यही उसकी प्राथमिकता थी। लेकिन एक दिन जब उसने जीवन का यथार्थ देखा तो उसकी प्राथमिकता का महत्व समाप्त हो गया।

रात के दस बज गए थे। इडा बड़े कम्पाउण्ड के बरामदे में टहल रही थी। एक आदमी आया जो भागकर आने के कारण हांफ रहा था। उसने इडा को बुलाया। उसका गला भरा था उस आदमी ने कहा "उसकी पत्नी प्रसव वेदना में है। क्या इडा उसके साथ चलकर उसकी पत्नी को देखेगी?"

इडा को यह कुछ मनोरंजक लगा। उसने कहा, "मैं डाक्टर नहीं हूं। मैं डाक्टर स्कडर को बुलाती हूं।"

वह व्यक्ति निराश हो गया। उसने कहा, "इससे काम नहीं चलेगा। मैं आपके पिता का सम्मान करता हूं। लेकिन वे पुरुष हैं। पर पुरुष से इलाज कराने के बजाय मेरी पत्नी मर जाना पसंद करेगी, भले ही वे डाक्टर स्कडर क्यों न हों!"

"तुम्हारा मतलब है . . ." इडा लगभग चीख पड़ी। आदमी ऐसा मूर्ख कैसे हो सकता है। उस औरत को डाक्टरी चिकित्सा की आवश्यकता थी। फिर भी वह उपलब्ध डाक्टर से अपनी पत्नी का इलाज नहीं कराना चाहता था।



इडा ने उस आदमी को समझाने की कोशिश की। लेकिन उस आदमी ने एक न सुनी और वह लौट गया। इडा उसके रवैए से परेशान हो गई। उसे मानसिक आघात भी लगा।

रात कुछ और बीती ही थी कि एक और आदमी आया। उसे भी मदद चाहिए थी। उसकी पत्नी भी प्रसव वेदना में थी। वह भी महिला डाक्टर चाह रहा था। इडा को लगा कि वह असंभव मांग कर रहा है। इडा ने उसे कोसा, समझाया, प्रार्थना की कि 'वह उसके पिता को ले जाकर इलाज करने दे।'

उसके पिता बगल में खड़े सुन रहे थे। उस आदमी ने भी अपना सिर हिलाकर इडा के सुझाव को ठुकरा दिया और चला गया।

"बेटी! यहां ऐसा ही होता है। ये लोग प्रसव-वेदना से पीड़ित स्त्री का इलाज मुझसे नहीं कराएंगे। वे केवल लेडी डाक्टर से कराते हैं। लेकिन यहां लेडी डाक्टर उपलब्ध ही नहीं है।" उन्होंने बताया।

एक और आदमी अपनी पत्नी के प्रसव के लिए सहायता मांगने आया। इसने इडा की सेवाएं मांगी क्योंकि उस आदमी की पत्नी को प्रसव में कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था तो इडा को अपने ऊपर विश्वास नहीं हुआ। इडा ने कह दिया कि "वह डाक्टर नहीं है।"

इससे आदमी की सारी आशाएं भंग हो गयीं। वह भी चला गया। साथ में अपने भाग्य को कोसता गया।

अगले दिन सुबह इडा ने सुना कि वे तीनों औरतें चिकित्सा के अभाव में मर गईं।

इस समाचार ने इडा को हिलाकर रख दिया। उसे मानसिक वेदना ने तार-तार कर दिया था। उसने दुखदाई विचारों को भुलाने की कोशिश की लेकिन वह ऐसा नहीं कर सकी। उसे अपने पिता के शब्द याद आए , "अगर तुम किसी खराब स्थिति के संबंध में कुछ नहीं कर सकती हो तो बेहतर यही होगा कि उसे भुला दो।"

इडा रात की घटनाओं को बिसरा न सकी। अगर वह डाक्टर होती तो वह मदद कर सकती थी और शायद वह उन औरतों को बचा सकती थी।

यह विचार बराबर उसके दिमाग में घूमता रहा। वह दुविधा में पड़ गयी थी।

जल्दी ही अमेरिका में उसके बसने तथा किसी अमीर युवक से शादी करने की योजना पृष्ठभूमि में चली गई। वह सब उसे अब मृगमरीचिका-सा लग रहा था। उसे प्रकाश के दर्शन हो गए थे। वह जीवन का अर्थ समझ गयी थी। उसने मन में कहा, "मैं अमेरिका वापस जाऊंगी, डाक्टर बनूंगी और फिर भारत वापस लौट कर लोगों की सेवा करूंगी। उन्हें मेरी जरूरत है।"

उसे अंधेरी रात में प्रकाश दिख गया था। आज भी वेल्लोर में यह प्रकाश जगमगा रहा है।

नया जीवन

तेरह मई, 1994, पुणे शहर शीतल और सुखदायी था जबकि शेष भारत गर्मी की चपेट में था।

सुधा अपनी नववधू की पोशाक में नदाहाली श्रीपाद राव के समीप जा पहुंची। वहां उसने रुककर क्षण भर के लिए अपने उपकारी की ओर देखा। उसका हृदय कृतज्ञता से भर आया और उसने झुक कर उस के चरणों को स्पर्श किया। चरणों पर आंसूओं की कुछ बूंदें टपक गईं। राव ने सुधा को नया जीवन प्रदान किया था।

छह वर्ष पूर्व, विवाह के कुछ समय बाद, सुधा ने अपने पति को खो दिया था और विधवा हो गई थी। उस समय उसकी आयु केवल 18, वर्ष थी। यौवन और उसकी आकांक्षाओं पर पानी फिर गया था। ऐसा लग रहा था कि उसके लिए जीवन में सब कुछ समाप्त हो गया है।

वास्तव में, यदि राव न होते तो उसके लिए यह जीवन पथ का अन्त ही था। राव ने उसे अंधेरे से मुक्त कराने में सहायता की थी। राव ने सुधा के जीवन साथी के लिए शिवानन्द इंगलेश्वर को, जो 37, वर्षीय युवक था और राष्ट्रीय जल विकास एजेन्सी में एक कनिष्ठ अधिकारी था, का भी चयन कर लिया था।

राव को सुधा ने पुनर्विवाह के यज्ञ में इष्ट देवता के रूप में देखा।

सुधा खड़ी हुई और उसने राव का आशीर्वाद लिया। राव ने धीरे से कहा, "ईश्वर तुम्हें जीवन की सारी खुशियां प्रदान करे। ईश्वर करे तुम सुखी विवाहित जीवन बिताओ।"

जब राव ने ये शब्द कहे तो उनका दिमाग बचपन के दिनों की ओर लौट गया। तब वह बहुत छोटे थे . . . होंगे कोई पांच वर्ष के।

एक दिन वे स्कूल से लौटे। घर में रोने-धोने का कोहराम मचा हुआ

था। सामने उनकी चाची खड़ी थीं आयु होगी . . . लगभग 12, वर्ष। सिर झुका था और आंखों में आंसू भरे थे। राव की आगे पैर बढ़ाने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। वह स्तब्ध खड़े थे। वे चाहते थे कि दौड़कर जाए और अपनी चाची से लिपट जाएं। उनकी बांहों में समा जाएं। वह अपनी चाची से बेहद प्यार करते थे। चाची उन्हें अक्सर सोने के पहले गीत सुनाती थीं, थपथपाती थीं, खाना खिलाते समय कहानियां सुनाती थीं, उनके साथ तरह-तरह के खेल खेलती थीं। वे बहुत सुन्दर थीं।

चाची ने भी नदाहाली राव को निराशा भरी दृष्टि से देखा। उन्हें क्या हुआ था? राव के माता-पिता क्यों छाती पीट-पीटकर रो रहे थे? इनमें अन्य बड़े लोग भी शामिल थे। क्यों वे सभी रो पीट रहे थे? उसकी चाची क्यों इतनी चुपचाप और मौन खड़ी थी?

उन्होंने तीन वर्ष पहले घर छोड़ा था। वधू के रूप में। उसके बाद उनमें जो परिवर्तन हुआ था, वह हैरान करने वाला था।

वह उस समय और भी चक्कर में पड़ गया जब उसने देखा कि वे अब रंगीन कपड़े नहीं पहनती थीं। न आभूषण धारण करती थीं। वे हमेशा सफेद कपड़ों में ही दिखलाई पड़ती थीं। वे माथे पर सिंदूर भी नहीं लगाती थीं। किसी खेल में हिस्सा नहीं लेती। वे प्राय: एकांत में ही रहती थीं। वे कहीं जाने पर भी मौन ही रहती थीं। उत्सवों के दौरान वे अधिकतर रसोईघर में ही भोजन तैयार करतीं।

नदाहाली राव ने उनको एक दो बार इस स्थिति से बाहर निकालने की कोशिश की।

लेकिन चाची समेत सभी ने उसे झिड़क दिया।

उनकी इस स्थिति का कारण समझने में उसे कुछ वर्ष लग गए। उसकी चाची के पति का देहांत हो गया था। वे विधवा हो गई थीं। परम्पराओं के अनुसार उनका यह दुर्भाग्य था। अब उन्हें बड़ा कठोर जीवन व्यतीत करना पड़ रहा था, हर शुभ कार्य से उन्हें अलग रहना पड़ता था। उन्हें तपस्विनी और व्रत उपवास का जीवन व्यतीत करना पड़ रहा था।

इससे उन्हें गहरा दुख हो रहा था। लेकिन राव कुछ नहीं कर सकते थे।

उन्होंने शपथ ली कि मैं इस हालत को बदलूंगा। मैं इसमें परिवर्तन लाऊंगा।

लेकिन कैसे?

यह इन्हें पता न था।

राव ने अनेक सामाजिक सुधारकों की जीवनियां पढ़ीं। वह *राजा राममोहन राय, वीरास लिंगम* और *महर्षि कर्वे* जैसे साहसी लोगों की जीवनियों से बड़े प्रभावित हुए। धीरे-धीरे उनके विचारों ने पक्का रूप धारण किया।

परिणामत: उन्होंने उपन्यास लिखा। नाम था *ओसा बाकुडु*। यह कन्नड़ में था। हिन्दी में इसका अनुवाद था - नवजीवन कथानक था 'पुर्नविवाह'। यह उपन्यास 1983 में छपा।

बहुत से लोगों ने उन्हें चिढ़ाया। ताने कसे। व्यंग्य किए। बहुत से रिश्तेदारों ने कहा 'वह ऐसी बातें लिख रहा है जो वह कहता तो है लेकिन करेगा नहीं।' बहुत से लोगों ने कहा कि 'कथनी और करनी में अन्तर होता है।'

नदाहाली राव ने अपने कथन को कार्य रूप में बदलने की कोशिश की। उन्होंने एक विधवा से विवाह करने की ठानी। उन्होंने सोचा कि वह दुनिया को दिखला देंगे कि 'वह जो कहते हैं वह करते हैं। वह अपने सिद्धान्तों के अनुसार जीवन जीते हैं।'

1985 में उन्होंने उषा नाम की एक विधवा से विवाह किया। पहले विवाह से उसके एक पुत्री थी। उन्होंने व्यक्तिगत रूप से विधवा उषा को नर्क से निकाला लेकिन उन्हें अभी सन्तोष नहीं हुआ। उन्हें कम उम्र की विधवाओं से बड़ी सहानुभूति थी। क्या वे अच्छा जीवन बिताने की हकदार नहीं हैं। वे क्यों दुख भरा जीवन बिताएं? अत्यन्त दुखमय जीवन क्यों जीयें अगर वे विधवा हो गई तो इसमें उनका क्या कुसूर है? क्या अच्छा जीवन बिताने की उनकी आशा और आकांक्षाएं विधवा होते ही खत्म हो जाती हैं?

उषा उनको इन भावनाओं से सहमत थी। इन्हीं विचारों से राव की संस्था *परिवर्तन* की स्थापना हुई। इस संस्था का उद्‌देश्य कम उम्र की विधवाओं की सहायता करना था।

परिवर्तन ने अपने कार्यक्षेत्र का विस्तार किया। यह कठिन कार्य था। सामाजिक बाधाएं, पुराने प्रतिबंध, ये सब नए रास्ते के मार्ग में कठिनाइयां उत्पन्न करने लगे। लेकिन राव इनसे नहीं घबराए। उन्होंने इन विधवाओं को समझाया कि वे अपनी जंजीरों को तोड़कर बाहर निकलें। उन्होंने उनसे पढ़ने लिखने को कहा। बहुत सी विधवाओं को उन्होंने नौकरियां दिलवाईं। इस तरह वे आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र हो गईं। उनमें आत्मविश्वास वापस लौटा।

कुछ विधवाओं को विवाह के प्रस्ताव मिलने लगे।

जिन स्त्रियों को कट्टरपंथ से लड़ना पड़ा उन्हें *परिवर्तन* ने आवश्यक समर्थन प्रदान किया।

सुधा, उन्हीं की संस्था की सदस्य थी। उसके पास जो कुछ था वह राव की देन थी।

बचपन में राव ने जो दुख झेला था उसका ही यह परिणाम था जो वे सुधारक के रूप में उभरे। यह वह दर्द था जो उनके मन में 12, वर्षीया विधवा चाची के घर वापस लौटने पर उन्हें देखने के बाद झेला था। उसने उनके विचारों को ठोस रूप दिया था। उसी ने उनको समाज सेवक बनने की प्रेरणा दी थी।

राव का काम अब भी चल रहा है। इस तरह की कई अन्य सुधाओं को जीवन का नया अर्थ समझने में उनकी सहायता की आवश्यकता है ताकि वे जीवन में प्रसन्नता और पूर्णता प्राप्त कर सकें।

देशी होने का अभिमान

द्वितीय विश्व महायुद्ध के शुरू होने पर अनेक भारतीय असमंजस में पड़ गए। वे जानते थे कि यह महायुद्ध भयंकर होगा। विश्व के नेतृत्व के लिए दो परस्पर विरोधी शक्तियों में युद्ध की ठन गई थी। उनमें से मित्र राष्ट्र लोकतंत्र का पक्ष ले रहे थे। भारतीयों की सहानुभूति मित्र राष्ट्रों के प्रति थी।

ब्रिटेन मित्र राष्ट्रों में से एक था।

ब्रिटेन के विरुद्ध भारत को शिकायत थी।

युद्ध समाप्त होने के बाद वह भारत को स्वतंत्रता देने का वादा करके मुकर रहा था। ब्रिटेन भारत को अपनी रक्षा का दायित्व देने के लिए भी तैयार नहीं था। उसके इस हठीले रवैए ने नेताओं को 'भारत छोड़ो' आन्दोलन छेड़ने के लिए विवश कर दिया।

लेकिन कई देशभक्त भारतीयों ने मित्र राष्ट्रों की लक्ष्यपूर्ति में सहायता की। उन्हें लगा कि लोकतंत्र की जीत में सहायता करना आवश्यक है।

बीजू पटनायक उस समय युवा थे। उनके पास विमान चलाने का लाइसेंस था। मित्र राष्ट्रों को विमान चालकों की आवश्यकता थी। चालकों की संख्या बहुत कम थी। इसलिए बीजू पटनायक से पूछा गया कि 'क्या वे विमान चालक के रूप में काम करेंगे?'

पटनायक ने विचार किया। इस बारे में निर्णय करना आसान नहीं था। लेकिन अंत में उन्होंने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

उन्होंने अनेक बार उड़ानें भरीं। कई बार उन्होंने विभाग की सामग्री पहुंचाई। कई बार रक्षा कर्मचारियों को भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाया।

एक दिन उनसे कहा गया कि उन्हें एक ब्रिगेडियर को कुवैत पहुंचाना है।

पटनायक दिल्ली हवाई अड्डे पर पहुंच गए। उन्होंने विमान के सारे कल-पुर्जों को जांचा।

विमान की जांच के बाद वे 'काकपिट' से नीचे कूद पड़े। यात्रा के लिए विमान बिलकुल तैयार था। वे जीवन का आनंद पूरी तरह उठा रहे थे। विमान चलाना उन्हें बहुत अच्छा लगता था।

वे इसके बाद कैफेटेरिया चले गए वहां उन्होंने नाश्ते का आर्डर दिया। उड़ान भरने में अभी भी पैंतालीस मिनट बाकी थे। वहां उन्होंने एक प्याला काफी मंगाई। तभी एयरपोर्ट के एक अधिकारी ने कैफेटेरिया में प्रवेश किया। उसने पटनायक का जोर से अभिवादन किया। पटनायक ने उसका उत्तर दिया।

उस अफसर के पीछे एक अंग्रेज खड़ा था। वह वर्दी में था। पटनायक ने उसको उड़ती नजर से देखा और समझ लिया कि यही ब्रिगेडियर है। पटनायक से कहा गया था कि उन्हें एक ब्रिगेडियर को कुवैत पहुंचाना है। पटनायक ने सोचा शायद यही व्यक्ति उनके साथ विमान में जाने वाला यात्री है।

हवाई अड्डे के अफसर ने खड़े होकर और ब्रिगेडियर की तरफ मुड़ कर कहा, "सर, यही आपके विमान के पायलट हैं।"

ब्रिगेडियर ने प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा, "क्या! एक इंडियन पायलट! ब्लडी इंडियन! इसे क्या आता है? नहीं, यह नहीं चलेगा!"

पटनायक को धक्का लगा। अन्दर ही अन्दर वे क्रोध से भर गए। उन्होंने सोच लिया कि वे उसके साथ और भी धृष्टता का व्यवहार करेंगे। लेकिन वे एक शब्द भी बोले नहीं। उन्होंने जलपान किया, काफी पी। अपने को बिलकुल शांत रखा। चेहरे पर जरा-सी भी परेशानी के चिन्ह नहीं आने दिए।

एयरपोर्ट अधिकारी ब्रिगेडियर के नाराज होने से अचंभित रह गया था तथा क्रुद्ध भी। वह ब्रिगेडियर को कैफेटेरिया से बाहर ले गया। रास्ते में उसने बताया कि "सर हमारे पास पायलटों की कमी है। जो हैं उनमें पटनायक बहुत अच्छा है। जब आप कुवैत की हवाई यात्रा करेंगे तो इनके विमान संचालन में एकदम सुरक्षित रहेंगे।"

ब्रिगेडियर हिचकिचाते हुए सहमत हो गया।

उसके पास और कोई विकल्प नहीं था। उसे विशेष विमान से विशेष मिशन पर कुवैत जाने के आदेश थे। पायलट के भारतीय होने के कारण वह अपना प्रस्थान स्थगित नहीं कर सकता था।



पटनायक काकपिट में जाकर बैठ गए। उन्होंने इंजन चालू कर दिया।

इंजन जोर की आवाज कर रहा था। पटनायक प्रस्थान संकेत की प्रतीक्षा करने लगे।

तभी एयरपोर्ट अधिकारी ने पटनायक के कक्ष में प्रवेश किया। उसके पीछे ब्रिगेडियर खड़ा था। उसने कहा, "ब्रिगेडियर साहब से मिलो। मैंने इनसे कह दिया है कि आप बड़े अच्छे और योग्य पायलट हैं।"

ब्रिगेडियर मुंह फुलाए रहा और थोड़ा मुस्कुराया।

पटनायक ने उसकी उपेक्षा करते हुए एयरपोर्ट अधिकारी से कहा, "मेरी प्रशंसा में कहे गए शब्दों के लिए धन्यवाद।"

ब्रिगेडियर को पटनायक के व्यवहार ने डंक-सा मार दिया। वह एकदम मुड़ा और अपनी पिछली सीट पर जाकर बैठ गया। उसने एक पुस्तक निकाली और उसे पढ़ना शुरू कर दिया।

एयरपोर्ट अधिकारी विमान से उतर गया। पटनायक को जाने का संकेत मिल गया। विमान दौड़ा। उसने गति पकड़ी और उड़ने लगा। दस मिनट के बाद विमान अपने मार्ग पर था। विमान अपनी गति से चल रहा था।

पटनायक अब अपनी सीट से उठे।

वह कॉकपिट से बाहर आए। ब्रिगेडियर ने उनके कदमों की आहट सुनी। वे एक बार उसके पास से निकल गए। लेकिन ब्रिगेडियर ने पायलट के आने-जाने की आवाज को सुना-अनसुना कर दिया।

पटनायक ने कठोर आवाज में कहा, "खड़े हो जाओ।"

ब्रिगेडियर ने किताब पर से अपनी आंखें उठाई। उसने नाराजगी की दृष्टि से पटनायक की ओर घूरा। इसके बाद पटनायक की ओर क्रोध भरी दृष्टि से देखते हुए कहा, "तुमको क्या हो गया है? तुम जानते हो, मैं कौन हूं?"

पटनायक ने तुरंत उत्तर दिया, "तुमने मुझे 'ब्लडी इंडियन' कहा। अब माफी मांगो!"

ब्रिगेडियर ने क्रोध से कांपते हुए कहा, "नहीं मांगूगा। मैं तुम्हें अभी शूट कर दूंगा!" और उसने अपनी पिस्तौल निकाल ली।

पटनायक तनिक भी नहीं डरे। उन्होंने बहुत शांत भाव से कहा, "अगर तुम मुझे गोली मार दोगे तो हम दोनों साथ मरेंगे। तब हवाई जहाज कौन चलाएगा।"

ब्रिगेडियर का चेहरा पीला पड़ गया।

"खड़े हो जाओ और जब तक मैं बैठने को न कहूं तब तक खड़े रहो।" पटनायक हंसे। ब्रिगेडियर खड़ा हो गया। अब उसका चेहरा गुस्से से लाल हो गया था।

पटनायक काकपिट लौट गए। विमान कुवैत हवाई अड्डे पर उतरा। ब्रिगेडियर हवाई जहाज से उतर गया। वह विमान अड्डे के अधिकारियों पर चिल्लाया, "पायलट को विमान से उतरते ही गिरफ्तार कर लो।" लेकिन पटनायक विमान से उतरे ही नहीं। उन्होंने विमान प्रस्थान की अनुमति की प्रतीक्षा भी नहीं की। फौरन विमान का इंजन चालू कर दिया। विमान फिर दौड़ने लगा कुछ ही क्षण में वह हवा में था।

जब दिल्ली में हवाई जहाज उतरा तो ब्रिगेडियर की शिकायत वायरलैस से हवाई अड्डे पर आ चुकी थी। उन्हें हिरासत में ले लिया गया। उन पर मुकदमा चला। ब्रिगेडियर को हाजिर होने को कहा गया। जजों ने दोनों के बयान सुने। उसने पटनायक की आंखों में देखा। पटनायक अपने बयान पर दृढ़ रहे। उनकी आंखों में अभिमान की चमक थी। जज ने कारण समझ लिया। ब्रिगेडियर ने भारतीय युवक के स्वाभिमान को ठेस पहुंचाई थी। जज ने मन-ही-मन युवक के साहस की सराहना की।

जज ने अपना फैसला सुनाया। उन्होंने पटनायक को अदालत की कार्रवाई समाप्त होने तक वहीं रहने का दण्ड दिया। ब्रिगेडियर को भी यही सजा दी गयी।

भारतीय होने के अभिमान के लिए पटनायक को दंड भुगतना पड़ा। भारत की आन की रक्षा के लिए यह सजा बहुत छोटी थी जो पटनायक ने झेली।

साहस की विजय

ब्रिगेडियर रेजीनाल्ड स्टीफन नोरोन्हा शांति स्थापना के लिए कांगो आए थे। शांति बनाए रखने के लिए भारत से जो सैनिक आए थे, वे इसके नायक थे।

वह क्रिसमस की पूर्व संध्या थी। यह वह समय था जब लोग घृणा का त्याग करते हैं और एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप तक दोस्ती का हाथ बढ़ाते हैं। नोरोन्हा को उम्मीद थी कि क्रिसमस के दिन शांति रहेगी।

लेकिन यह आशा चूर-चूर हो गयी।

खबर आई कि कटंगीज सैनिकों ने संयुक्त राष्ट्र के एक हेलीकाप्टर को मार गिराया है। यह खबर वज्रपात की तरह आई। नोरोन्हा को इस की आशा नहीं थी। उन्हें दुख हुआ। उस समय उनका दुख और बढ़ गया जब उन्हें पता लगा कि भारतीय अफसर लेफ्टीनेण्ट एस.एस. कांग, इस घटना में मारे गए हैं।

यह बात 24 दिसम्बर 1962, की है। उन्होंने सोचा उनके रिश्तेदार और मित्र भारत में धूमधाम से क्रिसमस मनाने की तैयारी में लगे होंगे। कांगो में वह ऐसी स्थिति में फंस गए थे जहां शांति भंग होने का खतरा उत्पन्न हो गया था। उन्हें ईंट का जवाब पत्थर से देने का अधिकार था। उनके पास साधन भी थे जिससे वे कटंगीज सैनिकों से बदला ले सकते थे।

लेकिन नोरोन्हा ने इन विचारों को अपने मन से निकाल दिया।

उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि खून के बदले खून का सिद्धान्त ईसाइयत के खिलाफ है। दूसरे वे भारत से कांगो युद्ध के लिए नहीं आए हैं। वे शांति स्थापित करने आए हैं। वे शांति ही बनाए रखेंगे। वे बिना किसी शस्त्र के कटंगीज सैनिकों के अधिकारी से बात करने के लिए जाएंगे। नोरोन्हा के मित्रों, साथियों और सहयोगियों ने इस विचार का विरोध किया। उन्होंने कहा,

"यह काम बड़ा जोखिम का है। कौन कह सकता है कि युद्ध प्रेमी कटंगी क्या कर बैठे? नोरोन्हा को यह खतरा मोल लेने की क्या जरूरत है?"

नोरोन्हा ने उनसे कहा कि 'वह यहां कांगो में शांति बनाए रखने आए हैं। और इसके लिए वे सब कुछ यहां तक कि अपना जीवन भी न्यौछावर करने को तैयार हैं।'

लगभग दो फर्लांग की दूरी पर कटंगीज सैनिक स्थित थे। वे उसी की तरफ रवाना हुए। उन्होंने अपने साथ केवल दो अधिकारियों को लिया। फ्रेंच बोल सकने वाले भारतीय अधिकारी मेजर डीसूजा और मुख्य जनसंपर्क अधिकारी सीतू मलिक जो भारतीय सैनिक दस्ते के साथ कांगो भेजे गए थे। मेजर डीसूजा ने अपने साथ बैटरी चालित मेगाफोन लिया था। तीनों व्यक्ति कटंगी मोर्चे की तरफ बढ़े।

जल्दी ही वे वहां पहुंच गए जहां कटंगी सैनिकों ने बाधाएं खड़ी कर रखी थीं। नोरोन्हा ने डीसूजा से कहा कि वे मेगाफोन पर यह घोषित करें कि "मैंने आपके मुख्य अधिकारी जनरल मूको से मिलने को कहा था। लेकिन वे नहीं आए। इसलिए मैं स्वयं आपसे मिलने आया हूं। मैंने किसी भी तरह की अप्रिय घटना होने से बचाने के लिए ऐसा किया है। मैं चाहता हूं कि कोई भी हताहत न हो।"

डीसूजा ने यह घोषणा फ्रेंच में की। उन्होंने संदेश को दुहराया। संदेश तेज आवाज में और स्पष्ट भाषा में किया गया था।

कटंगीज सैनिक दस्ते में इसकी प्रतिक्रिया क्या होती है अब तीनों भारतीय उसकी प्रतीक्षा करने लगे। उन्होंने कुछ पैरों की आहट सुनी। कुछ फुसफसाहट सुनी। इसके बाद एक अफसर कई सैनिकों से घिरा हुआ झाड़ी में से निकल कर सामने आया। अफसर का चेहरा बड़ा गंभीर था। उसके साथ जो आदमी थे वह भी डरावने लग रहे थे।

नोरोन्हा अफसर को देखकर मुस्कुराए उन्हें आशा थी कि इससे अफसर के मन में कोई नफरत होगी तो वह दूर हो जाएगी। नोरोन्हा उस अफसर के कुछ और निकट गए। उन्होंने अफसर से कहा "मैं इस बात से दुखी हूं कि हेलीकाप्टर में सवार लोगों को कटंगीज सैनिकों ने हमला कर मार डाला। हेलीकाप्टर दुर्घटनाग्रस्त हो गया।" नोरोन्हा ने कहा कि "यह गैर-जिम्मेदाराना हरकत थी।" कटंगीज अफसर पत्थर के बुत की तरह खड़ा रहा। उसने कोई प्रतिक्रिया प्रकट नहीं की।

नोरोन्हा ने फिर नरम आवाज में कहा, "अभी तक आप लोगों ने बड़े

अनुशासित सैनिकों की तरह व्यवहार किया है।" नोरोन्हा इसके बाद थोड़ा चुप हो गए। उन्होंने देखा कि अनुशासित कहने से अनुकूल प्रतिक्रिया हुई।

उन्होंने देखा कि जो बात कही गई उसका अनुकूल परिणाम हुआ। उससे उन्हें कुछ आशा बंधी। वे प्रसन्नता से हंसे और कहा, "अब तक आपने अनुशासित सैनिकों की तरह व्यवहार किया है। इसीलिए मैं आपसे स्वयं बात करने आया हूं। मैं आपकी और आपके सैनिकों की सुरक्षा की व्यक्तिगत गारंटी देता हूं। जैसा आप देख रहे हैं, मैं आपके पास बिना किसी शस्त्र के निहत्था और बिना किसी अंगरक्षक के बात करने आया हूं।"

अफसर और उसके सैनिकों ने अपने सभी हथियार जमीन पर फेंक दिए। उन्होंने मैत्रीभाव प्रदर्शित किया। उन्होंने नोरोन्हा की तरफ देखा और मुस्कुराए। वे इसकी प्रतीक्षा करने लगे कि नोरोन्हा बताए कि यहां किस उद्देश्य से आए हैं।

नरमी से लेकिन दृढ़ता से नोरोन्हा ने कहा कि "संयुक्त राष्ट्र वाले हेलीकाप्टर को मुक्त कर दीजिए।" नोरोन्हा के संकल्प के संबंध में कोई कमजोरी नहीं थी। फिर भी उसमें अपील थी। कटंगीज अधिकारी ने समझ लिया कि नोरोन्हा पक्के इरादे से आए हैं। नोरोन्हा ने आगे कहा कि "अगर उनका अनुरोध नहीं माना गया तो मजबूरन उन्हें अन्य तरह की कार्रवाई के बारे में विचार करना पड़ेगा। वे हेलीकाप्टर लेकर ही रहेंगे। भले ही इसके लिए उन्हें बल प्रयोग क्यों न करना पड़े।"

अफसर थोड़ा हिचकिचाया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे? अगर वह नोरोन्हा को हेलीकाप्टर ले जाने देता है तो इससे क्या वह अपने बड़े अधिकारियों की इच्छा का उल्लंघन करेगा। वह क्या करे, इस संबंध में वह कोई निश्चय नहीं कर पा रहा था। लेकिन उसने यह समझ लिया था कि नोरोन्हा शांति के दूत हैं। वह मन-ही-मन नोरोन्हा के साहस की सराहना कर रहा था। नोरोन्हा वहां आए थे, निहत्थे बिना किसी शस्त्र के? बिलकुल दुश्मन की मांद में। ऐसा दुर्लभ साहस, उसने कभी नहीं देखा था। उसके मन में नोरोन्हा के साहस के लिए सम्मान और आदर था।

सौभाग्यवश, फैसला करने का जोखिम उस अफसर को उठाना नहीं पड़ा। राष्ट्रपति शोम्बे के कार्यालय से एक आदेश आया। उसमें कहा गया था कि 'संयुक्त राष्ट्र का हेलीकाप्टर उसके सैनिकों को लौटा दिया जाए।'

कटंगी अफसर ने झुक कर नोरोन्हा के प्रति सम्मान प्रकट किया। यह नोरोन्हा के साहस के प्रति श्रद्धांजलि थी। नोरोन्हा ने शान्ति के एक अभियान में सफ़लता पा ली थी।

क्रोध का ज्वार

दिसम्बर की संध्या थी। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। चौथी पैरा रेजीमेण्ट का एक गश्ती दल मौसम से बेपरवाह अपनी ड्यूटी करने निकल पड़ा। वे चल रहे थे। अत्यन्त विश्वासपूर्वक। उनकी निगाह ऐसी किसी भी चीज को खोज रही थी। जो अजीब हो या तुरंत स्पष्ट न देखी जा सके। सैनिक बड़े ध्यान से हर वस्तु को देख रहे थे। भले ही वह छिपा दी गई हो। वे वह आवाज सुन लेते थे जो सामान्यत: कानों को सुनाई नहीं पड़ती। वे एक तरह के शिकारी कुत्ते थे जो इसलिए भेजे गए थे जो दुश्मन को चाहे वे किसी भी तरह से छिपे हों, उन्हें सूंघ लेतें थे।

उनके मन में जरा भी भय नहीं था। निस्संदेह कुछ ही दिन पहले पन्द्रह दिनों तक चलने वाला भारत-पाकिस्तान युद्ध समाप्त हुआ था। पाकिस्तान ने जो अनिवार्यत: होना था उसे स्वीकार किया था। पूर्वी भाग टूटकर अलग हो गया था। बंगलादेश अस्तित्व में आ गया था। पाकिस्तान पराजित हो गया था और उसने युद्ध विराम स्वीकार कर लिया था। लेकिन दोनों देशों के बीच कुछ ऐसे स्थान थे जहां दोनों देशों के सैनिकों के बीच झड़पें हो जाती थीं।

जहां तक गश्ती दल देख सकता था उस गश्ती दल ने उस क्षेत्र को छान डाला था। अकस्मात गश्ती दल के सदस्यों ने एक स्थान् पर देखा कि दुश्मन उनकी सीमा में घुस आया था। शत्रु जलवाली हेडवर्क्स क्षेत्र में प्रविष्ट हुआ था। पाकिस्तानियों ने अपनी रक्षा की दृष्टि से भौगोलिक गहराई प्राप्त करने के लिए ऐसा किया था।

यह खबर तुरन्त ब्रिगेड कमांडर को दी गई। कार्रवाई करने के पहले अधिकारी ने और सूचनाएं मंगवाई। वह रिपोर्ट के बारे में सुनिश्चित हो जाना चाहते थे। उन्होंने सोचा कि गश्ती दल को कुछ गलतफहमी हुई है। फिर भी उन्हें अन्दर-ही-अन्दर ऐसा लग रहा था कि उनके जवानों को धोखा नहीं हो सकता।

और सूचना आने पर इस बात की पुष्टि हो गई कि पाकिस्तानियों ने जलवाला हेडवर्क्स के चारों तरफ रक्षा प्रबंध किए हैं। तुरंत इसकी सूचना कोर कमांडर को दी गई। उसने 28 दिसम्बर को सवेरे चार बजे कार्रवाई करने के आदेश दिए और दुश्मन को वहां से भगा देने के निर्देश दिए।

तुरंत शिविर में हलचल शुरू हो गई। इस खबर ने कि सुबह कार्रवाई होनी है, सैनिकों को पुलकित कर दिया था। वे कार्रवाई के लिए तैयार थे। वे किसी भी सैनिक भिड़न्त के खतरों को जानते थे। हर संघर्ष में जन-धन और सामग्री की क्षति होती थी। कुछ अपने प्राण गंवाते थे तो कुछ हाथ-पांव और जीवन भर के लिए अपंग हो जाते थे। लेकिन इन खतरों से सैनिक जरा भी भयभीत नहीं हुए। ऐसे खतरे तो सैन्य जीवन का हिस्सा ही है।

यथासमय सवेरे ठीक चार बजे भारतीयों की कार्रवाई शुरू हो गई। पाकिस्तानियों ने जवाबी कार्रवाई की। मोर्टार और तोपों की गोलाबारी से सारा क्षेत्र गूंज उठा। पाकिस्तानियों ने भी गोलाबारी शुरू कर दी। वे लगातार गोलाबारी करते गए। 'पैरा रेजीमेंट' के भारतीय सैनिक आक्रमण के पूरे दायरे में घिर गए थे। वे गोले आने पर झुक जाते और दुश्मन को चकमा दे बच जाते। लेकिन उन्हें पता नहीं था कि गोला किस दिशा से और कब आएगा। गोलों की बौछार चारों तरफ से हो रही थी। कुछ सैनिक घायल हो गए थे। वे गिर जाते, घावों के दर्द से चीखते, लेकिन जब भी अवसर मिलता वे अपने हथियारों को काम में लाने से नहीं चूकते।

भारतीय धीरे-धीरे अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहे थे। जब दुश्मन की गोलाबारी थमती वे अपने निशाने की तरफ बढ़ जाते। यह बड़ा ही खतरनाक मिशन था। लेकिन सब सैनिक अंतिम सांस तक लड़ने के लिए संकल्पबद्ध थे।

लगभग डेढ़ घंटे के घमासान युद्ध के बाद भारतीयों ने पाकिस्तानी चौकी पर कब्जा कर लिया। भारी तोपों की गोलाबारी के बीच से होकर उन्होंने अपने लक्ष्य तक पहुंचने का रास्ता बना लिया था। उन्होंने जमीनी सुरंगों से बचते हुए अपना रास्ता बना लिया था। अनेक बंकरों से अभी भी गोलीबारी हो रही थी जबकि कई बंकरों की गोलीबारी को उन्होंने शांत कर दिया था।

भारतीय सैनिक प्रसन्न थे। प्रसन्न इसलिए कि उन्होंने हेडवर्क्स क्षेत्र पर कब्जा कर लिया था। बेशक, यह विजय उन्होंने भारी जन-धन गंवाकर हासिल की थी। उनके कई साथियों ने अपने प्राण गंवा दिए थे। इससे कहीं ज्यादा घायल हो गए थे।

ऐसा लग रहा था कि सब कुछ ठीक हो गया है। लेकिन तभी अकस्मात् मीडियम मशीनगनों की गोलाबारी ने भारतीयों को घायल करना शुरू कर दिया। यह गोलाबारी एक बंकर से हो रही थी। इसमें एक पाकिस्तानी यूनिट थी जो गोलाबारी कर रही थी। भारतीयों ने जवाब देना शुरू किया। लेकिन दुश्मन की गोलाबारी जारी रही। जल्दी ही यह पता लग गया कि जब तक भारतीय, बंकर के और पास नहीं आ जाते तब तक पाकिस्तानी गोलाबारी बंद नहीं हो पाएगी। उसमें कई खूंखार पाकिस्तानी छिपे थे। ऐसे खतरनाक मिशन पर कौन जाएगा?

हवलदार टेक बहादुर गुरुंग इसके लिए आगे आए। तय हुआ कि वे रेंगते हुए बंकर तक जाएंगे। वे सैनिकों के दल का नेतृत्व करेंगे। वे दुश्मन के बंकर तक पहुंचेंगे। और पाकिस्तानी सैनिकों से हथियार डलवाएंगे।

उन्होंने लीक से हटकर पद्धति अपनाने की अनुमति प्राप्त कर ली।

उन्होंने अपने साथ 'मोर्टार' तोपें ले लीं। अपनी खुखरी को म्यान में रख लिया। अब उन्होंने आगे बढ़ना शुरू किया। अपने को जहां तक संभव था छाया में रखते हुए वे बढ़ते गए। सैनिक उनके पीछे थे। अभी सूर्योदय नहीं हुआ था। कटकटाती सर्दी उनको कंपा रही थी। उन्होंने सर्दी से बचने के लिए काफी कपड़े पहने थे।

अंतत: वे उस बंकर के इतने समीप पहुंच गये कि मोर्टारों का उपयोग कर सकते थे, उन्होंने गोलाबारी शुरू कर दी। पहला गोला गुरुंग ने दागा। उनके साथियों ने फौरन कुछ और गोले दागे। सारा क्षेत्र अग्नि से प्रकाशित हो गया। कान फाड़ देने वाली आवाजों से सारा क्षेत्र प्रतिध्वनित हो गया। उस मारकाट में गुरुंग पाकिस्तानियों के सुरक्षित स्थल पर पहुंच गए। जो पाकिस्तानी अब भी लड़ रहे थे उनसे भिड़ने के लिए गुरुंग ने अपनी खुखरी निकाल ली। अब एक-एक आदमी से गुरुंग लड़ रहे थे। यह बड़ी कठोर लड़ाई थी। न तो कोई दया मांग रहा था, न कोई दया कर रहा था। गुरुंग ने बड़ी वीरता से युद्ध किया। मरने के पहले गुरुंग ने कई पाकिस्तानी मार दिए।

उनके साथ जो भारतीय सैनिक गए थे वे भी पीछे नहीं हटे। गुरुंग के बलिदान से प्रेरणा पाकर उन्होंने और भीषण युद्ध करना शुरू कर दिया। उन्होंने दुश्मन की चौकी को नष्ट कर दिया। जिस पाकिस्तानी ने प्रतिरोध किया उसे खत्म कर दिया और अन्तत: विजय प्राप्त कर ली। जितने लोग गए थे वे सब बलिदान करने से हिचके नहीं और उन्होंने वहीं प्राण त्याग दिए।

वे भारतमाता की रक्षा में कुरबान हो गए। मातृभूमि की रक्षा उनको अपने प्राणों से भी प्रिय थी।

आज सारा भारत उनका कृतज्ञ है।

गुरुंग को मरणोपरांत 'वीर चक्र' से अलंकृत किया गया। देश के गौरव की रक्षा के लिए दुश्मन का नाश करने के लिए वे आग का गोला बन गए। अपनी अनुकरणीय वीरता से उन्होंने दूसरों को प्रेरणा दी।

कर्त्तव्य परायणता

खुखरी भारतीय नौसेना का पनडुब्बी निरोधक लड़ाकू पोत था। वह समुद्र में धीमी लहरों के टकराने से हिल रहा था। सागर की हल्की-हल्की लहरें समुद्र पोत को ऐसे हिला रही थीं जैसे झूले में मां बच्चे को झुलाती है। नीले आसमान में चांद का टुकड़ा चमक रहा था। असंख्य तारे झिलमिला रहे थे। वे आसमान को गरिमा दे रहे थे। आसमान को देखकर ऐसा लग रहा था जैसे वह हीरों से जड़ा हुआ मखमली गलीचा हो।

ऐसा लग रहा था जैसे सारा संसार शांति से आवृत्त हो।

लेकिन *खुखरी* पर नौसेना के जो अफसर और नौसैनिक तैनात थे वे जानते थे कि यह सब मिथ्या है। वे ड्यूटी पर थे। वे राष्ट्र रक्षा के कार्य में रत थे। वे पाकिस्तान से युद्ध में लगे थे। पाकिस्तान ने भारत से युद्ध छेड़ रखा था।

यह 9 दिसंबर, 1971 की रात थी।

कप्तान महेन्द्रनाथ मुल्ला डेक पर खड़े थे। वे आशा करते थे कि दुश्मन की कोई पनडुब्बी अगर मार के दायरे में आ गई तो वे उसे नष्ट करने में समर्थ होंगे। कार्रवाई करने के लिए उनके हाथ बेचैन थे। यही हाल अन्य अधिकारियों और नौसैनिकों का था। वे पनडुब्बी डुबाने का आनंद अनुभव करना चाहते थे।

बेशक, वे यह जानते थे कि कभी-कभी शिकारी स्वयं शिकार बन जाता है। कप्तान मुल्ला जहाज का एक चक्कर लगाने गए। उन्होंने अफसरों और नौसैनिकों से बातचीत की। चालीस वर्ष की आयु में भी वह बड़े चुस्त-दुरुस्त लगते थे। ऊपर से वे बड़े कठोर और सख्त लगते थे लेकिन अन्दर-ही-अन्दर वे उन अफसरों और कर्मचारियों की योग्यताओं से परिचित थे जिनका वे नेतृत्त्व कर रहे थे। उन्हें उन पर गर्व था।

वे वापस लौटे। जब वे अपने केबिन की तरफ जा रहे थे तो उन्हें

हल्का धक्का लगा। जहाज एक बार ऊंचा और फिर नीचा हुआ। कैप्टन मुल्ला को भी ठोकर लगी। लेकिन उन्होंने अपने आपको संभाल लिया।

एक सेकेंड के लिए उन्होंने सोचा कि जहाज ऊपर नीचे क्यों हुआ? जहाज को निशाना बनाया गया था। किसी पनडुब्बी ने जहाज पर आक्रमण कर दिया था। जहाज एक तरफ झुकने लगा था।

यह क्षण तत्काल कार्रवाई का था। कैप्टन मुल्ला ने उस दर्द की उपेक्षा की जो सिर से पैर तक उनके शरीर में दौड़ गया था। वे तुरंत अपने काम में जुट गए। वे फौरन पीछे की तरफ दौड़ गए। वे लेफ्टीनेंट कमांडर सूरी से टकराए।

"हम पर हमला हुआ है। समय गंवाना नहीं है। अफसरों और अन्य कर्मचारियों को आदेश दो कि वे जहाज को फौरन छोड़ दें।" कैप्टन मुल्ला ने आदेश दिया।

"यस सर," लेफ्टीनेंट कमांडर सूरी ने उत्तर दिया।

"कुछ भी नहीं किया जा सकता। जहाज डूब रहा है। हमें निकल जाना चाहिए। जितने भी लोग संभव हो जहाज से चले जाए।"

"राइट सर!" सूरी ने सहमति में सिर हिलाया। वह दौड़ते हुए इंटरकाम के पास गए। उन्होंने सभी अफसरों और कर्मचारियों को बुलाया और आदेश सुनने को कहा। उन्होंने घोषणा की कि 'जहाज को पनडुब्बी ने निशाना बनाया है। यह बहुत से अफसरों और कर्मचारियों को भी मालूम था। उन्होंने भी जहाज पर झटका महसूस किया था। यह भी देखा था कि जहाज एक तरफ झुक गया था। इसलिए उन्हें आश्चर्य नहीं हुआ जब लेफ्टिनेंट कमांडर सूरी ने आदेश दिया कि जहाज छोड़ने की कार्रवाई तुरंत शुरू की जाए।

एक क्षण भी नष्ट नहीं किया गया।

बहुत-सी जीवन नौकाएं तुरंत समुद्र में उतार दी गईं।

अफसरों और कर्मचारियों को 'लाइफ बेल्ट' वितरित कर दी गईं।

"हम तैयार हैं, सर!" लेफ्टिनेंट कमांडर सूरी ने अपने वरिष्ठ कैप्टन मुल्ला को सूचना दी।

"बहुत अच्छा!" अपने ओठों को दबाकर कैप्टन मुल्ला ने कहा।

कुछ अफसर और नौसैनिक प्रतीक्षा कर रहे थे। सबके लिए पर्याप्त

संख्या में नौकाएं और 'लाइफ बेल्ट' नहीं थी। जब उनके सीनियर साथी और नौसैनिक मौत का सामना कर रहे हों, उन लोगों में कोई भी अपनी जान नहीं बचाना चाहता था।

कैप्टन मुल्ला ने उनकी हिचकिचाहट को महसूस किया। उन्होंने विलंब के कारण को समझ लिया। उन्होंने तेज आवाज में कहा, "जहाज छोड़ देने का काम शुरू करो। क्रम से पंक्तिबद्ध होकर रस्सी की सीढ़ी से उतरना शुरू करो। कोई भी हड़बड़ी नहीं होनी चाहिए। समझे। मैं तुम्हें सुरक्षित देखना चाहता हूं। तुममें से जितने भी सुरक्षित उतर सकें।"

एक अफसर उनके पास आया और उसने एक-एक को लाइफ जैकेट दी। इस आदेश ने अफसरों और नौसैनिकों के सामने कोई विकल्प नहीं छोड़ा। वे नौकाओं में उतरने लगे। धीरे-धीरे एक-एक करके। उनके दिल भरे हुए थे।

एक अफसर ने कैप्टन मुल्ला के पास आकर उन्हें 'लाइफ जैकेट' देने का प्रयत्न किया। "नहीं, नहीं जब तक तुम सब सुरक्षित उतर नहीं जाते। इसे नहीं लूंगा, इसके बाद ही मैं अपने जीवन के बारे में सोचूंगा।" कैप्टन ने कड़े शब्दों में दृढ़ता से उत्तर दिया।

अब जहाज बड़े खतरनाक ढंग से एक तरफ झुक गया था। स्पष्ट हो गया था कि जहाज शीघ्र ही डूब जाएगा।

आधा दर्जन जूनियर अफसर और 61 नाविक नौकाओं में उतर चुके थे। अब तक जहाज एक तरफ पूरा झुक चुका था। जो लोग नौका में थे वे उन्हें खेकर कुछ दूर जा चुके थे। वे मुड़े और उन्होंने कैप्टन मुल्ला को देखा। वह हाथ हिलाकर लोगों को विदा दे रहे थे। उनके बगल में उप-कप्तान सूरी खड़े थे। उनके चेहरों पर भय का कोई चिन्ह नहीं था। दो अफसर तथा कुछ अन्य लोग भी खड़े थे क्योंकि वे उतर नहीं सके थे। वे भी हाथ हिला रहे थे। इसके बाद जहाज उलट गया। क्रुद्ध राक्षस की तरह पानी जहाज में प्रवेश कर गया। शक्तिशाली लहरें डैक पर आ गईं। उन्होंने सब कुछ निगल लिया। जहाज को, अफसरों को, कर्मचारियों को, उपकरणों को सबको पानी में डुबा दिया।

जहाज डूब गया। पानी में भंवर पड़ रहे थे। बहुत-सी चीजें समुद्र की सतह पर तैर रही थीं। लेकिन जो लोग जहाज पर रह गए थे उनका कोई निशान नहीं था। न उन अफसरों और न उन लोगों का जो जहाज में खड़े रह गए थे। उन सबने बड़े साहस के साथ मृत्यु का आलिंगन किया था।

कैप्टन मुल्ला ने उस परंपरा का पालन किया था जो नाविकों को सम्मान प्रदान करती है। कैप्टन मुल्ला ने परम्परा के अनुसार जहाज के साथ ही जल समाधि ले ली थी।

मौत के मुंह में

आखिर, कार्रवाई का समय आ ही गया। यह अकस्मात् नहीं हुआ। तनाव लगभग दो महीनों से चल रहा था। पूर्वी-पाकिस्तान के लोग राष्ट्र की व्यवस्था में हिस्सा लेने के लिए बराबर दबाव डाल रहे थे। वे आर्थिक न्याय चाहते थे। पाकिस्तान सरकार आर्थिक न्याय देने में लगातार आनाकानी कर रही थी।

नवम्बर, 1971, तक स्पष्ट हो गया कि भारत और पाकिस्तान में इस प्रश्न को लेकर युद्ध होकर ही रहेगा। पाकिस्तान पूर्वी-पाकिस्तान के सवाल को मैत्रीपूर्ण ढंग से हल करने को तैयार नहीं था।

पाकिस्तान एक दलील यह दे रहा था कि 'भारत गड़बड़ी कर रहा है।' आवश्यकता पड़ने पर भारत युद्ध के लिए तैयार था।

चार दिसम्बर, को पाकिस्तान ने पहली बार आक्रमण किया।

बीकानेर के वायुसेना स्टेशन पर अधिकारियों और कर्मचारियों में बड़ी उत्तेजना थी, वे युद्ध में कूद पड़ने का अवसर पाने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

पांच दिसम्बर 1971 को दो 'मिस्टीयर' विमान कार्रवाई के लिए भेजे गए। इनमें से एक विमान फ्लाइट लेफ्टीनेंट पेठिया के नियंत्रण में था और दूसरा विमान फ्लाइंग आफिसर पार्थ दास गुप्ता उड़ा रहे थे। दोनों जहाज पाकिस्तानी क्षेत्र में काफी अंदर तक चले गए। ऊपर से उन्होंने देखा कि एक मालगाड़ी अग्रिम मोर्चों के लिए बहुत से टैंक लेकर जा रही है। दोनों विमान मालगाड़ी पर टूट पड़े। उन्होंने कई रॉकेट छोड़े। उसमें से कुछ मालगाड़ी की बोगियों को लगे। तुरंत उसमें से धुएं के बादल निकलने लगे।

इस कार्रवाई के दौरान पेठिया द्वारा चालित विमान को गोला लग गया। विमान झुक गया और गिर पड़ा। विमान का चालक बंदी बना लिया गया। फ्लाइंग आफिसर दास गुप्ता बीकानेर वापस लौट आए। वे अकेले और दुखी

वापस लौटे। उनका मनोबल क्षीण था, वे सोच रहे थे कि 'पता नहीं फ्लाइट लेफ्टीनेंट पेठिया का क्या हुआ?'

यह खबर पहुंची तब स्क्वाड्रन लीडर वी. एन. जौहरी, फ्लाइट लेफ्टीनेंट फिलिप डीसूजा के साथ अगली उड़ान के लिए तैयार हो रहे थे।

इस खबर से प्रतिशोध लेने की उनकी भावना और दृढ़ हो गई। काकपिट में बैठे हुए उनकी आंखों में दृढ़ता की भावना भर गई थी।

दोनों विमान, एक जौहरी और दूसरा डीसूजा द्वारा चालित, उत्तर की तरफ उड़े। लेकिन उन्हें कोई भी ऐसा निशाना नहीं मिला जिस पर वे आक्रमण करते। वे वापस लौट रहे थे कि इतने में उन्हें एक ट्रेन दिखलाई पड़ी। वह 'छिक् छिक्' करते हुए लाइन पर चली जा रही थी। कुछ बोगियों से धुआं निकल रहा था। दोनों विमान चालकों को यह स्पष्ट हो गया कि ट्रेन को कोई विशेष नुकसान नहीं हुआ है।

ट्रेन रोकने के लिए जौहरी ने इंजन पर हमला करने की ठानी। ट्रेन में मोर्चे के लिए टैंक लदे थे कुछ को छोड़कर अन्य सब सुरक्षित थे।

जौहरी ने इंजन पर फिर से हमला करने का निश्चय किया जिससे ट्रेन रुक जाए और टैंक मोर्चे पर न पहुंच सकें।

उन्होंने इंजन पर 19 राकेट दागे। ये राकेट इंजन को लगे। इंजन डगमगाया। एक ओर झुका और फिर पटरी से उतर गया। धूल, धुआं और आग ने इंजन को ढंक दिया। ट्रेन की कई बोगियां भी पटरी से उतर कर उलट गयीं। ऊपर से जौहरी ने ट्रेन में हुए नुकसान को देखा और मुस्कुराए।

तभी उनके विमान को एक गोला लगा। विमान का बायां पंख जल उठा। रेडियो संचार व्यवस्था भी भंग हो गई। विमान का मुख्य भाग भी प्रभावित हुआ क्योंकि गोले का कुछ हिस्सा वहां भी लगा था।

जौहरी सोचने लगे कि 'उन्हें क्या करना चाहिए?'

वे नहीं चाहते थे कि वे पाकिस्तानियों के हाथों गिरफ्तार हो जाएं।

वे मुड़ गए और भारत की तरफ उड़े। उन्होंने ढाई मिनट में 33 किलोमीटर की दूरी तय कर ली। उनके पीछे डीसूजा भी आ गए। डीसूजा ने सलाह दी कि वे विमान से कूद जाएं। डीसूजा ने देखा कि विमान के बाएं पंख में आग की लपटें लपलपा रही थीं। उसे लगा कि आग का गोला उड़ा जा रहा है।

जौहरी ने डीसूजा की सलाह पर विचार किया। बीकानेर 175 किलोमीटर दूर था। जौहरी ने सोचा कि क्या वे एक जलते पंख के बावजूद दूसरे पंख के सहारे 175 किलोमीटर की दूरी तय कर सकेंगे। क्षण भर के लिए उन्होंने सोचा कि वे विमान से पैराशूट के सहारे कूद जाएं। जैसा कि डीसूजा ने सलाह दी थी।

फिर एक और विचार उनके मन में आया। 'अगर वे कूद गए तो विमान नष्ट हो जाएगा। दुबारा वह नहीं मिलेगा। अगर वे बीकानेर तक पहुंच जाएं तो विमान बचा सकते हैं। उसकी मरम्मत की जा सकती है। और वह फिर काम में आ सकता है।'



यह सोचकर जौहरी ने मन में फैसला किया कि - वह कूदेंगे नहीं। वह हर तरह का जोखिम उठाएंगे। वे विमान को बीकानेर ले जाएंगे। वे हवाई अड्डे पर ही विमान उतारने की कोशिश करेंगे।

डीसूजा कुछ बड़बड़ाया। इससे ज्यादा वह कुछ कर भी नहीं सकता था। जौहरी सीनियर थे - इसलिए वह आर्डर भी नहीं दे सकता था। वह जौहरी की जीवन रक्षा के लिए मन-ही-मन प्रार्थना कर सकता था। वह पीछे-पीछे अपना विमान ला रहा था। आशा के विपरीत आशा करते हुए पंख की आग और न फैले। इस आशा का कोई कारण नहीं था। फिर भी वह आशा कर रहा था। आशा करना मानव का शाश्वत स्वभाव है।

जब यह खबर बीकानेर पहुंची कि विमान का एक पंख जल रहा है और उसी हालत में जौहरी विमान अड्डे की तरफ उड़ते आ रहे हैं तो हवाई अड्डे पर हलचल मच गयी। आपातकाल में हवाई जहाज को उतारने की सब तैयारियां कर ली गईं।

जौहरी ने विमान की गति बढ़ा दी। विमान के पंख की आग फैल गई। लपटें हवा में नौ मीटर ऊपर तक चली गईं। जमीन से हवाई जहाज जलता सितारा लग रहा था।

गोला लगने के चौदह मिनट बाद जौहरी का विमान बीकानेर हवाई अड्डे के ऊपर चक्कर लगा रहा था। एक बार फिर फ्लाइट कमांडर नकवी ने जौहरी से पैराशूट की सहायता से कूद जाने को कहा। जौहरी ने सलाह ठुकरा दी। निःसंदेह उन्हें पता था कि विमान को उतारने में क्या खतरे थे, विशेष रूप से जिस विमान का एक पंख जल रहा हो। फिर भी जौहरी की कूदने की इच्छा नहीं थी। विमान को उतारने में उन्होंने 'करो या मरो' की बाजी लगा दी। विमान को अड्डे पर उतारने के लिए उन्होंने दाहिनी तरफ घूमकर विमान के बाएं पंख को ऊपर रखते हुए हवाई अड्डे पर विमान उतार लिया था।

विमान के बाएं पंख की आग अब इतनी तेज हो गयी थी कि सारे विमान को जला देती। फिर भी विमान रुक गया। जौहरी कूदकर विमान से बाहर निकल आए। सबसे पहले नकवी उनके पास पहुंचे। दोनों भावुक हो गए थे, एक भी शब्द उनके मुंह से नहीं निकल रहा था। वे बोल नहीं पा रहे थे। उन्होंने एक दूसरे का हाथ पकड़ रखा था। और फिर वे अचानक हंसने लगे। हंसते ही गए, हंसते ही गए।

जौहरी मौत के मुंह से निकल आए थे। उन्होंने मौत कौ चुनौती दी थी।

क्यों? किसलिए?

जल्दी ही उत्तर मिल गया।

भारत-पाक युद्ध के अंतिम दिन जौहरी को एक उड़ान भरनी पड़ी। वे उसी विमान को चला रहे थे जो 5 दिसम्बर, को दुश्मन के गोले का निशाना बना था और अब उस में बायां पंख नया लगा था। विमान चालक और विमान दोनों ही फिर मैदान में आ गए थे। राष्ट्र की सेवा के लिए।

महान पुरुषों के जीवन में महानता किसी एक असाधारण कार्य या घटना के संयोग से ही नहीं होती है अपितु उनके आचरण और विचारों द्वारा समय-समय पर परिलक्षित होती है। जाने-माने लोगों के जीवन से संबंधित ऐसी ही प्रेरक घटनाओं का समावेश इस पुस्तक में किया गया है।

पुस्तक के लेखक आर.के. मूर्ति ने इन तथ्यों को बड़े ही सहज और रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है।

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

ISBN : 81-230-1108-3
मूल्य : 65.00 रुपये